सूक्ति सुधा

(Nectar of wise sayings)

(डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित सूक्तियों का संग्रह)

प्रवीण प्रलयङ्कर

सूक्ति सुधा
(Nectar of Wise Sayings)

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित
सूक्तियों का संग्रह

लेखक
प्रवीण प्रलयङ्कर

पार्वती पब्लिकेशन्स्
मुजफ्फरपुर

आदरणीय दादी जी के चरणों में
सादर समर्पित

प्राक्कथन

कोई भी साहित्यकार जब साहित्य रचना करने लगता है तो उसके पीछे भाषा की लम्बी परम्परा होती है। वह अपने पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश, साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा तथा नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि द्वारा साहित्य की रचना करता है और इस दौरान ऐसी बातें कह जाता है जो पाठक तथा उसके परिवेश के ऊपर चिरस्थायी प्रभाव छोड़ जाती हैं। संस्कृत भाषा को एक सर्वाधिक लम्बी परम्परा प्राप्त होने का गौरव मिला है जिसमें हमारे पूर्वज ऋषियों तथा क्रान्तदर्शी कवियों एवं लेखकों के चिन्तन का प्रतिफल निबद्ध है। अतः संस्कृत भाषा में कविता करने वाला कवि संस्कृत भाषा की सांस्कृतिक धरोहर को स्वतः प्राप्त कर लेता है।

पद्मश्री डा. सत्यव्रत शास्त्री इसी प्रकार के कवि हैं। इन्हें संस्कृतनिष्ठ कुल में उत्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। डा. सत्यव्रत शास्त्री के पिता परमादरणीय श्री चारुदेव शास्त्री 'अभिनव पाणिनि' के नाम से ख्यात रहे एवं संस्कृत भाषा के शुद्ध लेखन के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक ग्रन्थों का सृजन किया। डा. सत्यव्रत शास्त्री ने भी उनकी परम्परा का अनुसरण करते हुए व्याकरण शास्त्र में गम्भीर पाण्डित्य अर्जित किया और देश-विदेश में संस्कृत के क्षेत्र में विशेष सम्मान पाया। परमादरणीय श्री चारुदेव शास्त्री को अपने जीवनकाल में अनेक सम्मान प्राप्त हुए एवं आदरणीय डा. सत्यव्रत शास्त्री को भी देश-विदेश में अनेक सम्मानों से अलंकृत किया गया। परन्तु भारत के राष्ट्रपति द्वारा संस्कृत भाषा में उच्च विद्वत्ता के लिए दिया जाने वाला राष्ट्रपति सम्मान परमादरणीय चारुदेव शास्त्री, आदरणीय डा. सत्यव्रत शास्त्री तथा उनकी धर्मपत्नी श्रद्धास्पदा डा. उषा सत्यव्रत को प्राप्त हुआ है, यह अपने आप में एक अनुपम उपलब्धि है। सम्भवतः विश्व का यह पहला परिवार है जिसमें पिता, पुत्र तथा पुत्रवधू तीनों को किसी राष्ट्राध्यक्ष द्वारा किसी भाषा विशेष में सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुआ हो।

ऐसे परिवेश में पनपे पद्मश्री डा. सत्यव्रत शास्त्री ने अध्यापन, प्रशासन तथा संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार में अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। आज सम्पूर्ण विश्व में डा. शास्त्री की गणना संस्कृत के कुछ गिने चुने प्रमुख विद्वानों में की जाती है। आपने आठ संस्कृत काव्यों की रचना कर अपने कवित्व को संस्कृत जगत् के समक्ष सिद्ध किया है। ये कृतियाँ निम्नलिखित हैं -

1. बृहत्तरं भारतम्
2. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्
3. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्
4. इन्दिरागान्धीचरितम्
5. शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति
6. थाइदेशविलासम्
7. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्
8. पत्रकाव्यम्

प्रत्येक कृति का एक अपना कथ्य है। परन्तु सभी में कवि के काव्योत्कर्ष के साथ-साथ उनके चिन्तन का पुट पाठक को जीवन का मार्ग दर्शाता है। इन काव्यों में कवि ने अनेक स्थानों पर ऐसी महत्वपूर्ण उक्तियाँ की हैं जो व्यक्ति तथा समाज के लिए मार्गदर्शक एवं प्रेरक हैं। प्रस्तुत सूक्तिसंग्रह के लेखक श्री प्रवीण प्रलयङ्कर ने इन काव्यों में आयी सूक्तियों का बड़े परिश्रम तथा सूझबूझ से संकलन किया है तथा उन्हें अकारादि क्रम में प्रस्तुत कर पाठकों की सुविधा के लिए उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया है। पुस्तक में डा. सत्यव्रत शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी विस्तार से चर्चा की गयी है। डा. शास्त्री के जीवन सम्बन्धी परिचय के अनन्तर उनकी कृतियों का दिङ्मात्र परिचय दिया गया है, जिसमें कृतियों के काव्यांशों का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। लेखक ने डा. शास्त्री द्वारा लिखे छः आलोचनात्मक ग्रन्थों तथा अनुवाद कार्य का भी उल्लेख किया है और अंत में देश-विदेश के विभिन्न संस्थाओं द्वारा पद्मश्री डा. सत्यव्रत शास्त्री को दिए गए सम्मानों को

सूचीबद्ध किया है।

ग्रन्थ में पांच परिशिष्ट भी दिये गए हैं जिनमें डा. शास्त्री द्वारा लिखे गए प्राक्कथनों की सूची, विभिन्न सम्मेलनों एवं विचार गोष्ठियों में प्रस्तुत शोधपत्रों की सूची, डा. शास्त्री के निर्देशन में हुए शोध कार्यों की सूची, डा. शास्त्री द्वारा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिए गए व्याख्यानों की सूची तथा डा. शास्त्री की रचनाओं पर हुए शोध-कार्यों की सूची प्रदत्त की गई है। इस प्रकार से यह अपने आप में एक पूर्ण कृति बन जाती है।

ग्रन्थ के मुख्य भाग सूक्ति संग्रह के 345 सूक्तियों को अकारादि क्रम में रखा गया है। इनमें कुछ सूक्तियाँ ऐसी भी हैं जो डा. सत्यव्रत शास्त्री को परम्परा से प्राप्त थीं एवं जिनका उन्होंने अपने काव्यों में प्रयोग किया है, लेकिन अधिकांश सूक्तियाँ उनकी स्वयं की हैं।

विश्व स्तर पर यह एक स्वीकृत तथ्य है कि संस्कृत में ही सर्वप्रथम किसी रचना का प्रबंधन हुआ था और वह रचना थी, ऋग्वेद। हम देखते हैं कि ऋग्वेद के काल से ही सूक्तियों का प्रचलन भारतवर्ष में प्रारंभ हो गया था। ऋग्वेद की कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं -

दुरुक्ताय न स्पृहयेत्। (ऋ. 1. 41. 9)
(बुरा वचन बोलने की इच्छा न करे)

माहम् अन्यकृतेन भोजम्। (ऋ. 2. 28. 9)
(मैं किसी दूसरे द्वारा कमाए धन का उपभोग न करूँ)

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् । (ऋ . 10. 125. 3)
(मैं (वाणी) राष्ट्र की निर्मात्री हूँ तथा अनेक प्रकार के धनों का संग्रह करने वाली हूँ)

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। (ऋ. 10. 35. 13)
(जुआ मत खेलो। कृषि कार्य करो)

ऋग्वैदिक काल से आज तक संस्कृत भाषा में अनेकों ग्रन्थ

लिखे गये जिन्हें सौभाग्य से आज भी अध्येता उसी रूप में पढ़ता एवं समझता है जिस रूप में कवि ने उन्हें लिखा था। संस्कृत भाषा का बृहत् साहित्य कुछ ही प्रकाशित हुआ है और उसका बहुत बड़ा अंश अभी भी ग्रन्थालयों, पाण्डुलिपि संग्रहालयों, पोथीखानों तथा लोगों के घरों में पाण्डुलिपियों के रूप में अपने प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहा है। संस्कृत का प्रकाशित साहित्य भी अपने आप में विस्तृत आयाम में निबद्ध है। इस साहित्य में से सूक्ति संग्रहों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास निरंतर किया जाता रहा है। इस प्रकार का सर्वप्रथम प्रयास सम्भवतः चौदहवीं शताब्दी में शार्ंगधर ने 'सुभाषितरत्नभांडागार' में 4600 पद्यों को 163 खण्डों में प्रस्तुत करते हुए किया था। इसके अनन्तर सुभाषितों एवं सूक्तियों के संग्रह के प्रयास निरंतर होते रहे हैं जिनमें श्री के. पी. परब, कपिलदेव द्विवेदी, दिल्ली संस्कृत अकादमी आदि के प्रयास उल्लेखनीय हैं। स्वयं डा. सत्यव्रत शास्त्री ने भी 'सुभाषितसाहस्री' नाम से संस्कृत साहित्य के 1000 सुभाषितों का हिन्दी-अग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए एक ग्रंथ की रचना की है।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि संस्कृत भाषा में चिन्तन और अभिव्यक्ति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। वैदिक ऋषियों ने जिस दिशा में देखा काव्यों एवं महाकाव्यों के कवियों ने उसी धारा को गतिमान् रखा। आज का कवि भी उसी परम्परा में चिन्तनशील है और उस चिन्तन को अपनी अभिव्यक्ति में प्रस्फुटित करता है। यथा, कवि कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसम्भवम्' की उक्ति *शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्* संस्कृत भाषा के ज्ञाताओं के मुख से हम अनेकशः सुनते हैं और वे समय-समय पर अनेक सूक्तियों के साथ इस सूक्ति का प्रयोग भी करते हैं। डा. सत्यव्रत शास्त्री ने कालिदास के चिन्तन को आगे बढ़ाते हुए अपनी कृति 'पत्रकाव्यम्' में एक सूक्ति लिखी, *अतस्तात प्रकर्तव्यो यथाशक्ति परिश्रमः। कृतेऽतिक्रम्य शक्तिं स शरीरं सादयेन्ननु*। यहाँ व्यक्ति को अपने सामर्थ्य के अनुसार ही परिश्रम करने की सलाह दी गयी है क्योंकि सामर्थ्य से बढ़कर किया गया परिश्रम व्यक्ति को दुर्बल बना देता है। यह सूक्ति

इसका प्रमाण है कि संस्कृत भाषा निरन्तर मानवीय हित से जुड़ी रही है और वह मनुष्य के वैयक्तिक हितों और उसके सामाजिक कर्तव्यों के प्रति सदा मार्गदर्शन करती रही है।

इस कृति के लेखक श्री प्रवीण प्रलयङ्कर द्वारा डा. शास्त्री के ग्रन्थों से चुनी गई सूक्तियों का यह संग्रह वस्तुतः लोकोपकारक सिद्ध होगा। व्यक्ति को निराशा से बचाने के लिए ये सूक्तियाँ बहुत उपयोगी प्रतीत होती है। यथा, **उर्वी विशाला विभु चापि विश्वं मार्गा अनेके वितता इह स्युः।** अर्थात् पृथ्वी बहुत लम्बी चौड़ी है यह संसार भी बहुत व्यापक है। इसमें अनेक रास्ते खुले हुए हैं। यदि तुम्हें एक रास्ते में सफलता नहीं मिली तो दूसरे रास्ते में प्रयास करो। निराश मत होओ। जहाँ कवि ने रमणियों को अनुपेक्ष्य बताया है वहीं कामुकता की निन्दा भी की है। 'क्षमा' को महत्वपूर्ण बताते हुए कवि की लेखनी से कई सूक्तियाँ निस्सृत हुई है। कवि की प्रत्येक सूक्ति अपने आप में गम्भीर अर्थ रखती है। वस्तुतः सूक्तियाँ कवि के चिन्तन की सार होती हैं जो पाठक के लिए वहुत महत्त्व रखती है। पद्मश्री डा. सत्यव्रत शास्त्री का यह चिन्तन सूक्तियों के माध्यम से सुधी पाठकों का मार्ग दर्शन करेगा। डा. सत्यव्रत शास्त्री के सम्पूर्ण परिवार के प्रति लेखक की अद्भुत श्रद्धा से अभिभूत मैं इस संग्रह को सुधी पाठकों के समक्ष उनकी हितकामना से प्रस्तुत करता हूँ।

प्रो. श्रीधर वशिष्ठ

(राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित संस्कृत विद्वान्)

पूर्व कुलपति

श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ,

नई दिल्ली-110016

शुभाशंसा

एक प्रसिद्ध सूक्ति है - स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। प्रो. सत्यव्रत शास्त्री इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अपने देश की विभिन्न संस्थाओं से उनकी उपलब्धियों के लिए उन्हें अनेकानेक सम्मान तो मिले ही, थाइलैण्ड का सर्वोच्च राजकीय सम्मान भी इन्हे मिला जो केवल राष्ट्राध्यक्षों को ही वहाँ की सरकार देती रही है। प्रो. सत्यव्रत जी ने सारा जीवन अध्ययन-अध्यापन तथा भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रचार- प्रसार में लगाया है। इसके साथ ही अनेक ग्रन्थों का सृजन भी किया है। अधीतमध्यापितमर्जितं यशः के ये मूर्त निदर्शन हैं।

ऐसे मनीषी की कृतियों में प्रयुक्त सूक्तियों का सङ्ग्रह तथा उनका हिन्दी अनुवाद कर इस ग्रन्थ के लेखक श्री प्रवीण प्रलयङ्कर ने प्रशंसनीय कार्य किया है। आशा है इससे पाठक लाभान्वित होंगे।

प्रो. देवेन्द्र मिश्र
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

भूमिका

पद्मश्री डॉ. सत्यव्रत शास्त्री संस्कृत के उन पारखी विद्वानों में से हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता की छाप शिक्षक, अनुवादक, समालोचक एवं कवि सभी रूपों में छोड़ी है। नीरक्षीरविवेकिनी प्रतिभा, मौलिक चिन्तन एवं बहुमुखी व्यक्तित्व से संस्कृत काव्य जगत् में अक्षुण्ण ख्याति अर्जित करने वाले डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने आठ मौलिक ग्रंथों की रचना की है जिनमें यत्र-तत्र प्रयुक्त सूक्तियाँ उनके व्यक्तित्व एवं विशिष्ट गुणों की पारदर्शिका हैं। पाठक जब उन सूक्तियों का रसास्वादन करता है तो उनकी भीनी सुगन्ध से आकृष्ट हो एक अनूठे अपनत्व का अनुभव करता है जो चिर काल तक मन को अह्लादित करता है। वस्तुतः उनके द्वारा प्रयुक्त सूक्तियाँ कलिका की उन पंखुड़ियाँ की तरह हैं जो खुलते ही अपनी खुशबू से मनुष्य को आनन्दित करती हैं।

सूक्तियाँ प्राचीन काल से ही मनुष्य की भावनाओं को आधार प्रदान करने का कार्य करती आ रही हैं। अतः वैदिक ऋषियों से लेकर आधुनिक कवियों तक ने अपने ग्रन्थों में इनका प्रयोग किया है। सच तो यह है कि सूक्तियाँ सिर्फ काव्य की भाषा न होकर आम बोलचाल की भाषा का अंग बन चुकी हैं जिनका प्रयोग सामान्य जनजीवन में सुभाषित एवं लोकोक्ति के रूप में देखा जा सकता है। इनका प्रयोग सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग आदि सभी क्षणों में मार्गदर्शक के रूप में किया जाता है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को निखारने में अपना योगदान देता है।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित सूक्तियों को संग्रथित करने की प्रेरणा मुझे उस समय मिली जब मैं इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'श्रीरामकीर्ति-महाकाव्यम्' को पढ़ रहा था। प्राचीन काल से ही मनुष्य को राह प्रदान करने वाली इस कथा ने मेरे अन्दर एक नई स्फूर्ति जागृत की और मैंने इस काव्य पर कार्य करने का निश्चय कर इसे बार-बार पढ़ा। इसी

क्रम में मेरी दृष्टि इसके पद्यांश, *यदि याति लता स्वयमेव तरुं यदि याति नदी च तथा जलधिम्। नहि तत्र विचित्रमिति प्रकटं प्रकृतिः पुरुषं स्वयमेति यतः।।* पर गयी और इससे प्रेरित होकर मैनें इसमें प्रयुक्त सूक्तिओं पर कार्य करने का मन बनाकर गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री जी से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। गुरुवर ने प्रसन्नचित होकर अपनी अनुमति प्रदान की और मुझे अपने अन्य ग्रन्थ पढ़ने को दिये।

इस कार्य के दौरान सूक्ति संग्रह से लेकर अनुवाद तक में मुझे जब कभी भी किसी प्रकार की कठिनाई आयी गुरुवर ने उसे दूर कर मुझे अनुगृहीत किया जिसके लिए मैं उनका सदा आभारी रहूँगा। साथ ही, उनकी धर्मपत्नी श्रद्धास्पदा माता जी द्वारा दिए प्रोत्साहन के लिए मैं उनका आभारी रहूँगा।

परम पूजनीय प्रो. श्रीधर वशिष्ठ ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है, जिसके लिए मैं सर्वदा उनका आभारी रहूँगा। साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष आदरणीय प्रो. देवेन्द्र मिश्र के प्रति भी सदा नतमस्तक रहूँगा जिन्होंने न केवल शुभाशंसा लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है अपितु अपने अध्यापन वैशिष्ट्य से मुझे इस योग्य बनाया है कि मैं संस्कृत के क्षेत्र में कार्य कर रहा हूँ।

अन्ततः मैं अपने परिवार के समस्त जनों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे अध्ययन के क्षेत्र में न केवल एक दिशा प्रदान की है अपितु इसमें सर्वदा सर्वप्रकारेण सहायता भी दी है।

पुनः मैं अपने सभी मित्रों को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में मेरी सहायता की है, लेकिन अपने इस कार्य को मै सही अर्थो में तभी पूर्ण मानूँगा जब पाठक वर्ग को यह पसन्द आयेगा। अगर इसमें टंकण सम्बन्धी अशुद्धियाँ रह गयीं हो तो उनके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्रवीण प्रलयङ्कर

विषय सूची

विषयानुरुप सूक्तियों का वर्गीकरण*

*पृष्ठ सं. एवम् क्रम सं. के आधार पर

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पूज्य गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री जी 20वीं शताब्दी के उन उद्‌भट एवं मूर्धन्य संस्कृतज्ञों में हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता से न केवल भारतीय संस्कृत वाङ्मय को गौरवान्वित किया अपितु विश्व के अनेक देशों में इसके प्रचार-प्रसार द्वारा अपने प्रभावी व्यक्तित्व की अमिट छाप भी छोड़ी है। इनका जन्म 29 सितम्बर 1930 को पंजाब प्रान्त के लाहौर (वर्तमान में पाक के अन्तर्गत) के उस परिवार में हुआ, जहाँ वाग्देवी की कृपा पहले से ही थी। इनके पूजनीय पिता पण्डित चारुदेव शास्त्री को व्याकरण शास्त्र में अनन्य योगदान के कारण 'अभिनव पाणिनि' की सञ्ज्ञा से अभिहित किया जाता है। वे प्रसिद्ध डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में संस्कृत के प्रोफेसर के रूप में अनेक वर्षों तक अध्यापन कर सेवानिवृत्त हुए। अतः गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री को संस्कृत की शिक्षा पारिवारिक विरासत के रूप में पूज्य पिताजी के सान्निध्य एवं कुशल निर्देशन में मिलनी प्रारम्भ हुई। पिताजी अष्टाध्यायी को जगत्पिता एवं अमरकोष को जगत्माता रूपी अलङ्करण से अलङ्कृत किया करते थे। अतः स्वाभाविक था कि अपने पुत्ररत्न की शिक्षा का शुभारम्भ वे अष्टाध्यायी एवं अमरकोष से ही करते और उन्होंने ऐसा ही किया। गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री की शिक्षा अष्टाध्यायी एवं अमरकोष रूपी जिस आधारस्तम्भ पर अवस्थित हुई वह अनवरत रूपेण आज भी गतिशील है।

बाल्यावस्था से ही असीम प्रतिभासम्पन्न गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री की शिक्षा गुरुकुलीय एवं महाविद्यालीय शिक्षा पद्धति के साथ द्विविधरूपेण अबाध गति से चलती गयी। ओरियन्टल कॉलेज, लाहौर से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही इन्होंने कॉलेजीय स्तर की समस्त परीक्षाएँ पंजाब विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण कीं। इस दौरान इन्होंने

मैट्रिक परीक्षा में गवर्नमेण्ट स्कॉलरशिप प्राप्त किया, बी.ए. (आनर्स) संस्कृत की परीक्षा में अपने समय तक सर्वाधिक अङ्क पाकर कीर्तिमान स्थापित किया तथा एम.ए. संस्कृत की परीक्षा में भी विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान[1] प्राप्त कर इस उक्ति को पूर्णत: चरितार्थ किया कि *होनहार बिरवान के होत चीकने पात*। तदुपरान्त विशेषज्ञों से शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से इनका आगमन संस्कृतस्थली बनारस में हुआ जहाँ प्रसिद्ध हिन्दू विश्वविद्यालय से व्याकरण दर्शन से सम्बन्धित विषय *Concept of Time and Space in the Vākyapadīya* पर शोध कार्य कर इन्होनें अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया। बनारस प्रवास के दौरान ही इन्होनें अपने समय के प्रसिद्ध विद्वानों से संस्कृत की विविध विधाओं, यथा-पण्डित शुकदेव झा से व्याकरण महाभाष्य, पण्डित ढुंढिराज शास्त्री से नव्य-न्याय, पण्डित महादेव शास्त्री से साहित्यशास्त्र और स्वामी सुरेश्वराचार्य से वेदान्तदर्शन की शिक्षा ग्रहण की।

अपने विलक्षण एवं मनोहरी अध्यापन कला से छात्रों को मोहित करने वाले गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के अध्यापन जीवन का शुभारम्भ 1955 ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित हंसराज कॉलेज से हुआ। लेकिन, कुछ वर्षों के बाद ही इन्होंने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, जहाँ संस्कृत विभाग अभी-अभी खुला था, में व्याख्याता के पद को अलङ्कृत किया। पुन: 1959 ई. में इनका आगमन दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता के पद पर हुआ, जहाँ जुलाई 1963 ई. में *रीडर तथा 1970 ई. में पण्डित मनमोहन नाथ दर प्रोफेसर आफ संस्कृत* के रूप में आपको चयनित किया गया। 40 वर्षों के अध्यापन के बाद इनकी सेवानिवृत्ति दिल्ली विश्वविद्यालय से ही 1995 ई. में हुई। वर्तमान में ये सुप्रसिद्ध जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के

---

1. यहाँ यह ध्यातव्य है कि इनके पिता चारुदेव शास्त्री ने भी एम. ए. की परीक्षा में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

संस्कृत विभाग में मानद प्रोफेसर (Honorary Professor) के पद पर आसीन हैं। इस दौरान ही इन्होंने तीन महादेशों के निम्न छः विश्वविद्यालयों में विज़िटिंग प्रोफेसर (Visiting Professor) के रूप में अध्यापन कर अपनी विद्वत्ता का अपूर्व परिचय दिया है -

विश्वविद्यालय	*देश*	*अवधि*
1.चुलालौङ्कोर्न यूनिवर्सिटी, बैंकाक,	थाईलैण्ड	7 अक्टूबर 1977-5 नवम्बर 1779
2.यूनिवर्सिटी आफ ट्यूबिंगन, ट्यूबिंगन	जर्मनी	7 नवम्बर 1982 -31 जूलाई 1983
3.कैथोलिक यूनिवर्सिटी, ल्यूवेन	बेल्जियम	1 फरवरी 1985 -31 मई 1985
4.सिल्पाकौर्न यूनिवर्सिटी, बैंकाक	थाइलैण्ड	31 नम्वबर 1988 -7 जनवरी 1991
5.नार्थईस्ट बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटी,नौनखाई,	थाइलैण्ड	1 जून 1995 - 31 मार्च 1996
6.यूनिवर्सिटी आफ अल्वर्टा, एडमन्टन,	कनाडा	15 मार्च 1988 - 21 अप्रैल 1988

सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि किसी खास क्षेत्र में ही व्यक्ति लब्धप्रतिष्ठ होता है लेकिन ऐसा गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के साथ चरितार्थ नहीं होता। इन्होने अपनी बहुआयामी प्रतिभा को न केवल अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में प्रदर्शित करते हुए सशक्त व्यक्तित्व का परिचय दिया है अपितु इस दौरान एक सफल प्रशासक के रूप में स्थापित इनकी कीर्ति भी कभी धूमिल नहीं हो पाएगी। इन्होंने एक नहीं अपितु दो बार[2] दिल्ली विश्वविद्यालय के डीन के पद को सुशोभित किया फलतः इनके प्रशासकीय गुणों से प्रभावित होकर सरकार ने इनकी नियुक्ति श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी (उड़ीसा) के कुलपति पद पर की। यहाँ इन्होंने अपने प्रशासकीय दायित्वों को पूर्ण करने के अतिरिक्त संस्कृत के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में भी अविस्मरणीय योगदान किया। थाइलैण्ड प्रवास के दौरान इन्होंने थाई देश की राजकुमारी को संस्कृत पढ़ाई। वस्तुतः इनके द्वारा ही थाई राजवंश में संस्कृत का प्रवेश हुआ और सम्प्रति स्थानीय तीन विश्वविद्यालयों-- *डिपार्टमेन्ट आफ ईस्टर्न*

2. 15 नवम्बर 1975 से 5 जून 1976 तक एवं पुनः 15 जुलाई 1980 से 14 जुलाई 1982।

लैंगवेजेज -चुलालौङ्कौर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक, *सेन्टर फार संस्कृत स्टडीज* - सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक एवं *महाचुला बुद्धिस्ट विश्वविद्यालय*, बैंकाक में संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था है। इसके लिए सम्पूर्ण संस्कृत जगत् इनका आभारी रहेगा।

अध्यापक की अध्यापन कार्य की सफलता या असफलता का आधारस्तम्भ होता है-छात्र को पाठ्यविषय को हृदयंगम कराने में । यदि वह इस दायित्व में सफल होता है तभी वह सफल अध्यापक कहलाने का अधिकारी होता है। गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री मूलतः व्याकरण के प्राध्यापक थे जिसकी विषय-वस्तु सामान्यतः नीरस एवं दुरूह समझी जाती है। अतः इनके लिए यह और भी आवश्यक था कि व्याकरण को किस प्रकार सहजता से छात्रों के मनोमस्तिष्क में सुगम्य बनाया जाए ताकि छात्र उसे समझने में समर्थ हो सकें। वे इस चुनौती मे पूर्णतः सफल रहें हैं । यद्यपि मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय से कॉलेजीय शिक्षा के दौरान अधिक दिनों तक इनसे पाठ्य-विषय पढ़ने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि जिस वर्ष मैं एम.ए. उत्तरार्ध का छात्र बना उसी वर्ष इनकी सेवानिवृत्ति हो गयी, लेकिन इस अल्पावधि में ही व्याकरण-दर्शन के आधार ग्रन्थ वाक्यपदीय के शब्दब्रह्म जैसे बोझिल एवं उलझे हुए विषय को इन्होंने इतने सहज रूप से अध्यापित किया कि मानो वह संस्कार रूप में ही मेरे साथ अवस्थित हो गया हो। मैं व्यक्तिगत रुप से इनके उन 22 शिष्यों को धन्य मानता हूँ जिन्होंने इनके कुशल निर्देशन में अब तक संस्कृत के विभिन्न विषयों पर शोध कार्य किया है।[3]

एक लेखक के रूप में गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री का योगदान सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक दोनों प्रकार के लेखन क्षेत्रों में रहा है। सृजनात्मक लेखक के रूप में इनकी काव्यधारा का शुभारम्भ उस समय हुआ जब इनकी उम्र सिर्फ 12 वर्षों की थी। उस समय इन्होंने

---

3. द्रष्टव्य, परिशिष्ट-3

'षड्ऋतुवर्णनम्' नामक एक खण्डकाव्य की रचना की जिसका प्रकाशन 1942 ई0 में संस्कृत रत्नाकर पत्रिका (सम्पादक, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री) जयपुर, राजस्थान से हुआ। इसके सभी पद्यों में इन्होंने अलग-अलग छन्दों का प्रयोग कर बाल्यावस्था में ही अद्भुत विद्वत्ता का परिचय दिया एवं इस उक्ति को पूर्णत: चरितार्थ किया कि *Poets are born, not made.* उदाहरण के लिए, वर्षा ऋतु में मत्तमयूरों का वर्णन मत्तमयूर नामक छन्द में वे इस प्रकार करते हैं -

रम्येऽरण्ये सप्रमदं काममटन्तो मन्द्रध्वानान्वीक्ष्य पयोदान् दिवि रम्यान्।
नर्तं नर्तं चारुकलापा मुदमाप्ता रोरूयन्ते मत्तमयूरा अविरामम्।।

सृजनात्मक लेखक के रूप में इन्होंने अब तक आठ ग्रन्थों, जिनपर अबतक दो डि.लिट्. सहित 16 शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं या होनेवाले हैं [4] की रचना कर पाठक वर्ग को अनुगृहीत किया है। इन ग्रन्थों का समान्य परिचय एवं आलोचनात्मक मूल्याङ्कन इस प्रकार है-

1. बृहत्तरं भारतम्-सारस्वती सुषमा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1957.
2. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्- प्रथम संस्करण स्वप्रकाशित, वर्ष 1960 एवं द्वितीय संस्करण, प्रकाशक-मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1974.
3. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्-प्रथम संस्करण, प्रकाशक-गुरु गोबिन्द सिंह फाउन्डेशन, पटियाला, 1967 एवं द्वितीय संस्करण, प्रकाशक - साहित्य भण्डार, मेरठ, 1996
4. इन्दिरागान्धीचरितम्-भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1976
5. शर्मण्यदेश: सुतरां विभाति-अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ, 1976
6. थाइदेशविलासम्-ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1979

---

4. द्रष्टव्य, परिशिष्ट-5

7. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्- मूलामल सचदेव फाउन्डेशन एवं अमरनाथ सचदेव फाउन्डेशन, बैंकाक, 1990
8. पत्रकाव्यम्-ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1994

बृहत्तरं भारतम्

बृहत्तरं भारतम् प्राध्यापक बनने के बाद गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा लिखित प्रथम खण्डकाव्य है, जिसके सौ पद्यों में इन्होंने बृहत्तर भारत के रूप में जाने जाने वाले प्रत्येक देश के बीच सांस्कृतिक एकता स्थापित करने वाले कतिपय पहलुओं को उजागर किया है। ये देश विश्व के राजनीतिक मंच पर भले ही अलग-अलग नाम से जाने जाते हों लेकिन इनके बीच प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक एकता के सूत्र विद्यमान थे, जो आज भी स्थानीय सांस्कृतिक तत्त्वों के साथ समन्वित होकर अपनी पहचान बनाए हुए हैं-

अद्यापि सीतेति सरस्वतीति प्रभावतीति श्रुतितर्पणानि।
रामेति कृष्णेति सुदर्शनेति स्वरन्ति नामानि मनोहराणि।।[5]

काव्य के प्रथम अंश में गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने प्राचीनकालीन भारतीय राजाओं द्वारा दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों पर औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना का वर्णन किया है। यथा -

परं भरतवर्षीया न शस्त्रेण जयं पुरा।
अरोचयन्नतस्ते नो बलाद्देशान् विजिग्यिरे।।[6]

काव्य के द्वितीय भाग में इन देशों में भारतीयों के आगमन के वर्णन के अलावा कम्बुजद्वीप,शैलेन्द्रराज्य तथा बालिद्वीप का सामान्य वर्णन किया गया है। इस क्रम में गुरुवर ने इन देशों के प्राचीन इतिहास

---

5. बृहत्तरं भारतम्, 29
6. वही, 11
7. वही, 84

का संक्षिप्त वर्णन भी किया है। यथा, शैलेन्द्र राज्य के वर्णन में वे कहते हैं -

अर्बाभिधे प्रथितदेशवरे प्रजातैप्रस्तात्कालिकैः कृतिवरैरितिहासविद्भिः।
शैलेन्द्रनाम्न इति वृत्तमलेखि राज्यस्यास्ते तदेव खलु नः परमं प्रमाणम्।।[7]

भाषा एवं शैली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य एक सफल कोटि का खण्डकाव्य कहा जा सकता है। कोमलकान्त पदावली से युक्त इसके वाक्य या तो अल्पसमास युक्त हैं या फिर समासहीन । यथा -

किं मुधा रक्तपातेन किं वा नो भूमिकाम्यया।
इत्येवं धर्मजिष्णुत्वं कामयांचक्रिरे हि ते।।[8]

समासहीन पदों से युक्त निम्न पद्यांश में अनुप्रास अलङ्कार की सहज स्वाभाविक छटा द्रष्टव्य है -

विना युद्धं विना शस्त्रं विना सेनाश्च भीषणाः।
विना नीतिं पुरा द्वीपा भारतीयैर्विनिर्जिताः।।[9]

अन्यत्र अनुप्रास के साथ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का आनन्द भी लिया जा सकता है-

दिव्यस्य वा सुचरितस्य हि पुण्यभाजां संकीर्तनं किमपि पुण्यमथातनोति।
एवं यतेन मनसा प्रविचिन्त्य चिन्त्यमस्मिन् वयं सुखदकर्मणि सम्प्रवृत्ताः।।[10]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष से पूर्ण प्रस्तुत काव्य एक सफल कोटि का खण्डकाव्य है। इसके प्रत्येक पद्य में गुरुवर ने जिस बृहत्तर भारत की कल्पना की है वे यद्यपि वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिओं में विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर एक रूप नहीं हो सकता तथापि परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध को दृढ़ता प्रदान कर एक नई दिशा दिखाने में यह प्रेरणादायी बन सकते हैं।

---

8. *वही, 13*
9. *वही, 12*
10. *वही, 83*

श्रीबोधिसत्त्वचरितम्

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित प्रथम महाकाव्य है जिसके चौदह सर्गों में बोधिसत्त्व (भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म का नाम) के अवदानों (कथाओं) को वर्णित किया गया है। बोधिसत्त्व का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है - पूर्णरूपेण बुद्धत्व (ज्ञानबोध) की अवस्था से पूर्व में स्थित भगवान् बुद्ध का सत्त्व (आत्मा)। प्रस्तुत महाकाव्य में पालि एवं संस्कृत के कतिपय जातकों में उपलब्ध भगवान् बुद्ध के विविध अवदानों को गुरुवर ने परिष्कृत एवं परिमार्जित करते हुए काव्य शैली में उपन्यस्त करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। यहाँ भगवान् बुद्ध को पाँच रूपों में चित्रित किया गया है - दूसरे से पाँचवें सर्ग में राजा रूप में, पहले एवं आठवें सर्ग में व्यापारी रूप में तथा छठे, बारहवें एवं चौदहवें सर्ग में क्रमशः भिक्षु, कृषक एवं आचार्य रूप में। इस दौरान काव्य सर्वत्र बौद्ध धर्म के नैतिक आदर्शों एवं बुद्ध के विभिन्न जन्मों के उदात्त चरित्र रूपी आधार पर अवलम्बित है जिसे एकता प्रदान करने का कार्य सर्वव्यापी बोधिसत्त्व की आत्मा करती है।

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् का प्रमुख उद्देश्य भगवान् बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं को अनेकानेक दृष्टियों से उजागर करना है। इस क्रम में सर्वत्र वे प्रथमतः एक साधारण व्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं एवं क्रमेण उनका चरित्र उत्कर्षता को प्राप्त कर असाधारण बनता है। अतः यहाँ दो प्रकार की मानसिक स्थितियाँ दृष्टिगोचर हैं। यथा -

साधारण व्यक्ति के रूप में,

जातः क्रमेण ववृधे वयसाऽभिरूपः सत्यक्षमार्जवदयादिगुणैः सुरूपः।
सद्योऽनवद्यविविधागमलब्धविद्यः कृष्यादिकर्मनिपुणः शुशुभे स हृद्यः।।[1]

---

1. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12.4

असाधारण व्यक्ति के रूप में,

यूयं ह्युदात्तमतयो गृहिणोऽपि धन्या नैतादृशाः सुकृतिनो विलसन्ति वन्याः।
सिद्धिं लभध्वमभितो विनिवृत्तरागाः सर्वश्चकास्तु भवतां मुदितो निरागाः।।[12]

पात्रों की मानसिक स्थितियाँ एक ओर उदात्त और अतिप्राकृतिक और दूसरी ओर साधारण तथा निम्न कोटि की हैं। इस प्रकार के चारित्रिक विकास को गुरुवर ने सम्बन्धित पात्रों में तीव्र मानसिक अन्तर्द्वन्द्व दिखाकर सम्पन्न किया है। ऐसा मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व अरिष्टपुर नरेश के चरित्र में प्राप्त होता है जो पहले अपने सेनापति की सुन्दर पत्नी उन्मदन्ती के प्रति आसक्त हो जाता है पर बाद में पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर सोने के समान निर्मल बनता है। पापक नामक शिष्य के चरित्र में भी यह अन्तर्द्वन्द्व दिखता है जो पाप बोध क अपने नाम से किसी तरह छुटकारा पाना चाहता है और गुणसूचक नाम रखना चाहता है।

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् में मुख्यतः शृङ्गार एवं वीर रस की सहायता से काव्यधारा को प्रवाहित किया गया है। उन्मदन्ती के सौन्दर्य वर्णन एवं महाराज शिबि की उसके प्रति कामुक आसक्ति के वर्णन में कवि ने जहाँ शृङ्गार रस के सम्भोग पक्ष का सहारा लिया है वहीं किन्नर प्रेमीयुगल की पूर्वानुभूत विरह स्मृति के मर्मस्पर्शी वर्णन में इसी (शृङ्गार रस) का विप्रलम्भ रूप दृष्टिगत होता है। इन प्रेमियों की हृदयगत कोमल अनुभूतियाँ मानवोचित भावनाओं का यथार्थ रूप प्रकट करती हैं। यहाँ अनुचित कामभावना को प्रेम का विकृत रूप मानकर गुरुवर प्रेम के पवित्रतम रूप को ही श्रेष्ठ मानने के पक्षधर दिखाई देते हैं- *मतः प्रेमस्थेमा जगति परमं भेषजमिह।*[13]

---

12. वही, 12.82

13. वही, 11.3

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् की एक प्रमुख विशेषता है - इसकी परिष्कृत काव्यशैली। कवि की काव्यकला की सफल अभिव्यञ्जना तभी हो पाती है जब काव्य में भावानुरूप भाषा का प्रयोग किया जाए। कोमल भावों के वर्णन में ज़हाँ कोमलकान्त पदावली का प्रयोग अपेक्षित होता है वहीं कठोर भावों को प्रकट करने में कठोर भाषा ही प्रभावोत्पादक समझी जाती है। प्रस्तुत काव्य में प्रसादगुण सम्पन्न भावानुकूल भाषा का स्वाभाविक प्रवाह सर्वत्र दृष्टिगोचर है। फलतः शब्दों एवं वाक्यों में समरसता दिखाई देती है और कविता समतल भूमि में बहने वाली नदी की तरह समगति से अग्रसरित होती गई है। प्रसादगुण के प्रयोग के कारण काव्य में स्वाभाविकता सञ्चारित है। यथा- उन्मदन्ती के सौन्दर्य वर्णन प्रसङ्ग में,

रूपप्रकर्षेण समुज्ज्वलन्तीं सुवासिनीं चारुविलासिनीं ताम्।
अलोकसामान्यगुणाभिरामां क्षणं निरीक्ष्यैव समं व्यमुह्यन्॥[14]

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् में यत्र-तत्र सुन्दर बिम्ब योजना के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो काव्य के अलङ्कार विन्यास को सुशोभित कर रहे हैं। नए एवं अनुकूल उपमान कवि की बिम्बयोजना के प्राण हैं। किसी रमणी के लावण्य से आहत बौद्ध भिक्षु की तुलना ऐसे मृग से की गई है जो मधुरसंगीत के लय में खोकर शिकारी के बाणों से घायल हो जाता है-

विक्षिप्तचेताः स्वनिकेतनस्थः कामातुरोऽसौ बुबुधे न किञ्चित्।
प्रमुग्धगीतध्वनिलुब्धशल्यप्रविद्धसारङ्ग इवावतस्थे ॥[15]

वर्ण्यवस्तु में घटनाक्रम के सामान्य तथ्य को विशेष कथन से समर्थित करने के प्रयोजन से गुरुवर ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का

14. वही, 7.21

15. वही, 6.5

प्रभावी प्रयोग किया है। यथा, महाराज शिबि द्वारा उन्मदन्ती के गुणों का परीक्षण करने के लिए नियुक्त ब्राह्मण इस अनुपम सुन्दरी को देख अपनी बुद्धि एवं निर्णय शक्ति खो बैठते हैं क्योंकि कवि के अनुसार काम भावना से उत्पन्न विकार विवेकी व्यक्ति के मन को भी विक्षुब्ध कर देता है -

नष्टो विवेकः सकलोऽपि तेषां द्विजन्मनां कामवशं गतानाम्।
उन्मादयत्येव विवेकिनोऽपि कष्टो विकारः खलु कामजन्यः।।[16]

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् की एक अन्य प्रमुख विशेषता है - इसका कथाशिल्प एवं वर्णन कला। अबाधगति से गतिशील कहानी का कथाशिल्प पाठकों को कहीं भी उलझन में नहीं डालता है। फलतः काव्य में पाठकों की दिलचस्पी बढ़ती जाती है और वह कौतूहलवश इसे यथाशीघ्र समाप्त करने को उद्यत होते हैं। घटनाक्रम के विकास में बाधक लम्बे वर्णनात्मक प्रसङ्गों का इसमें अभाव है। अतः यहाँ वर्णित विविध घटनाएँ संक्षिप्त होते हुए भी सशक्त हैं। प्रायः घटनाओं को संवादात्मक रूप में प्रस्तुत करने के कारण काव्य में यत्र-तत्र नाटकीय स्थिति उत्पन्न हो गयी है। यथा -

सेनापति-

राजन्! मदीयः शुभचिन्तकस्त्वं दाता विधाताऽपि पुनस्त्वमेव।
मदङ्गनालिङ्गनजं प्रमोदं भूयो लभस्वेति निवेदयेऽहम्।।[17]

राजा-

धन्योऽसि मन्त्रिन्नहिपारक! त्वमिष्टं हि मे तेऽत्युपकारकत्वम्।
त्वया सदैवाचरितोऽस्ति धर्मस्त्वं वेत्थ सर्वं शुभकर्ममर्म।।[18]

---

16. वही, 7.22
17. वही, 9.31
18. वही, 9.33

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रीबोधिसत्त्वचरितम् न केवल चरित्रचित्रण की दृष्टि से अपितु काव्यात्मक गुणों से युक्त एक सफल महाकाव्य है।

श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्

17 जनवरी 1967 ई. को सिक्खों के दसवें व अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह के त्रिशताब्दीय जन्म दिन के उपलक्ष्य में अनेक भाषाओं में इनपर साहित्य रचना का निर्णय गुरु गोविन्द सिंह फाउन्डेशन के तत्वावधान में लिया गया। संस्कृत भाषा में यह कार्य पूर्ण करने का सौभाग्य डॉ. सत्यव्रत शास्त्री को मिला जिसे इन्होंने सहर्ष स्वीकार करते हुए अल्पावधि में ही इसे कार्यरूप दिया । इस कार्य हेतु इन्हें साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया जो सौभाग्यतः साहित्यिक योगदान हेतु प्राप्त इनके जीवन का प्रथम अलङ्करण है।

जैसा कि काव्य के नामकरण एवं आरम्भिक उद्घोषणा - *जातः पुरा भारतभूमिभागे गोविन्दसिंहो दशमो गुरूणाम्। तस्यैव सद्धर्मधुरोद्धुरस्य गीर्वाणवाण्या चरितं ब्रवीमि ।।*[19] से ही स्पष्ट होता है कि इसका प्रयोजन सिक्खों के दसवें एवं अन्तिम गुरु श्री गुरुगोविन्द सिंह की जीवनी को लिपिबद्ध करना है। गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने यह कार्य चार सर्गों में सम्पन्न किया है। प्रथम सर्ग में मुख्यरूपेण गुरु के जन्म, नवें गुरु तेग बहादुर द्वारा सिक्ख धर्म की रक्षा हेतु किए गए प्रयास तथा गुरु गोविन्द सिंह के गुरु पद पर आसीन होने का वर्णन है। द्वितीय सर्ग का सम्बन्ध गुरु गोविन्द सिंह का नाहन नरेश के निमन्त्रण पर नाहनगमन, फारसी, संस्कृत, पंजाबी, ब्रजादि विविध विषयों का अध्ययन तथा *चण्डी दी बार* एवं *अकालपूजा* नामक काव्य के प्रणयन

19. *श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्, 1.1*

तथा इनके द्वारा मुगल सेनापति म्यांखान की पराजय के वर्णन से है। तृतीय सर्ग में *विचित्र नाटक* की रचना, पंजप्यारे के रूप में पञ्चवीरों का चयन, खालसा पंथ की स्थापना एवं मुगल सेना के साथ युद्ध में गुरु की पराजय का वर्णन किया गया है जबकि चतुर्थ एवं अन्तिम सर्ग में गुरु के पुत्र अजीत सिंह का मुगल सेना के साथ युद्ध, गुरु गोविन्द सिंह का चमकौर गमन, शत्रुसेना के साथ गुरु के शिष्यों का संघर्ष एवं अन्त में गुरु के पुत्रों का प्राण त्याग तथा गुरु का ब्रह्म सायुज्य वर्णित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत खण्डकाव्य में गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने गुरु गोविन्द सिंह के जीवन की लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को वर्णित करने में सफलता पायी है। साथ ही, ऐतिहासिकता की दृष्टि से भी इसमें न्यूनता का अभाव है। सभी घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक हैं। इसके साथ ही गुरुवर ने अपनी उर्वरा कल्पनाशक्ति के बल पर काव्यात्मक गुणों को भी अपेक्षित स्थान पर समाहित किया है। यहाँ घटनाओं का क्रमिक विकास इस प्रकार किया गया है कि पाठक इसमें उलझते नहीं है। गुरु गोविन्द सिंह के चारित्रिक विकास को गुम्फित करने में गुरुवर पूर्णरूपेण सफल रहे हैं -

स तेजसा सूर्यशतप्रतापः कान्त्या तथा चेन्दुशताभिरामः।
आनन्दरूपः खलु देवदेवस्तेजोमयं धाम धरामुपेतः।।[20]

श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् का मुख्य रस वीर है। गुरु तथा गुरु के पुत्रों एवं शिष्यों द्वारा मुगल सेनाओं एवं सेनाधिकारियों के बीच युद्ध वर्णन में अपेक्षित वीर रस का सहारा लिया गया है। यथा -

'क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।'
ततोऽनुजानीहि रिपोश्चमूनां त्रासाय नाशाय च मां पितस्त्वम्।।[21]

---

20. वही, 1.14
21. वही, 4.19

अन्यत्र-

क्रोधेन बाढं ज्वलितो नरेशोऽवरङ्गजीवः स्फुरिताधरोष्ठः।
म्वज्जम्समाख्यं कुटिलं स्वसूनुमाह्वाययामास समादिशच्च।।[22]

आलङ्कारिक दृष्टि से भी श्री गुरुगोविन्दसिंहचरितम् एक सफल खण्डकाव्य है। इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास अलङ्कारों का यथावसर प्रयोग किया गया है। यथा -

समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् तद्वत् पुरं शिष्यवराः प्रविष्टाः।
आज्ञां वहन्तः शिरसा गुरोस्ते मुदा परीताः परया विनीताः।।[23]

अन्यत्र-

प्रलोभिता भूरि सुखैषणाभिः कष्टैरनिष्टैः परिवेष्टिता वा।
कल्याणहेतुं परिनिष्ठितास्था धीराः स्वधर्मं न परित्यजन्ति।।[24]

श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् के काव्य गुणों से प्रभावित होकर श्री रामकृष्ण भारती ने कहा है-

"उनकी कविता का एक-एक पद्य मानो एक-एक फूल है, जिसकी सुगन्ध अनोखी है। उन फूलों में से उन्होंने गुरु की प्रतिमा सजाई है, उनके भव्य रूप को साकार किया है, उस महान् आत्मा से तादात्म्य स्थापित किया है।"

स्वयं गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के शब्दों में,

"उस गुरु के गौरव ने ही उनकी वाणी को उनका चरितगान करने के लिए मुखरित किया।"

---

22. वही, 2.76
23. वही, 3.9
24. वही, 4.66

इन्दिरागान्धीचरितम्

न केवल भारत अपितु विश्व के ऐतिहासिक रङ्गमञ्च पर अपना स्वर्णिम नाम अङ्कित करने वाली भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी के जीवन चरित्र को संस्कृत महाकाव्य के रूप में निबद्ध कर गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने काव्य जगत् में चिरस्थायी कीर्ति को प्राप्त किया है। चरित्र प्रधान इस महाकाव्य के 25 सर्गों के सात सौ से अधिक पद्यों में श्रीमती इन्दिरा गान्धी के चरित्र का जो चित्रण किया गया है वह उनकी यथार्थ जीवन की परिसीमा का कहीं भी उल्लंघन न कर इसकी परिधि में ही घूमता है। अबोध बाल्यावस्था से लेकर परिपक्व प्रधानमन्त्रीत्व काल तक के श्रीमती इन्दिरा गान्धी के विविध चिंतनों को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में विवेचित कर गुरुवर ने परवर्ती लेखकों के लिए यह आदर्श उपस्थापित किया है कि किस प्रकार चरित्र प्रधान ऐतिहासिक महाकाव्यों का प्रणयन किया जाए।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी के चरित्र वर्णन की दृष्टि से सम्पूर्ण महाकाव्य को चार भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम सर्ग से सातवें सर्ग तक प्रथम भाग में श्रीमती गान्धी का जन्म एवं लालन-पालन का वर्णन है। आठवें सर्ग से चौदहवें सर्ग तक महाकाव्य के दूसरे भाग का सम्बन्ध श्रीमती गान्धी की शिक्षा एवं राष्ट्रसेवा की दीक्षा से है। पन्द्रहवें सर्ग से बीसवें सर्ग तक काव्य के तीसरे भाग में श्रीमती गान्ध ी द्वारा अपने पिता पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रति पितृसेवापरायणता एवं फीरोज़ गान्धी के साथ परिणय तथा दाम्पत्य जीवन वर्णित है, जबकि चतुर्थ एवं अन्तिम भाग में उन्हें कुशल एवं परिपक्व राजनेत्री के रूप में देश के सर्वाङ्गीण विकास में संलग्न दिखाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुवर श्रीमती इन्दिरा गान्धी के जीवन की लगभग सभी मुख्य घटनाओं की ओर अपनी लेखनी को ले गए हैं।

यद्यपि इस महाकाव्य का अंगीरस वीर है तथापि वात्सल्य, शृङ्गार, करुण आदि रसों से भी पाठक सर्वत्र आप्लावित होते हैं। यथा -

वीरद्वये बन्दिगृहे गतेऽपि पर्याकुलत्वं हृदये गतेऽपि।
नं स्त्रीजनस्तत्र जहौ स्वधैर्यं स्वदेशरक्षादृढबद्धबुद्धिः।।[25]

उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों से अलङ्कृत इनकी भाषा सर्वत्र भावानुगामी है। इनकी सहज शब्दावली पाठक को आनन्द से सराबोर कर देती है। यथा -

क्व न कठोरमिहाश्रमजीवनं क्व न सुखैः सकलैः सह वर्धनम्।
कृशतनुः सुकुमारवया इयमिति जना विविधं प्रबभाषिरे।।[26]

शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति

गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री को 1975 ई. के अपने यूरोपीय यात्रा के दौरान जर्मनी जाने का अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि इनका जर्मन-प्रवास अल्प अवधि की ही थी तथापि उन्होनें पर्याप्त भ्रमण किया। वहाँ से भारत लौटने के बाद अपनी मनोगत भावनाओं को इन्होंने *शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति* नामक यात्रा-वृत्तान्त के रूप में उपन्यस्त किया जिसे संस्कृत साहित्य में प्रथम विदेशी यात्रा वृत्तान्त होने का गौरव प्राप्त है। जैसा कि इसके उत्तरपीठिका में लेखक ने स्वयं कहा है इसका उद्देश्य केवल एक यात्रा वृत्तान्त का वर्णन करना ही नहीं अपितु भारत एवं जर्मनी के बीच मैत्री एवं सद्भाव पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है -

शर्मण्यदेशयात्रायाः प्रसङ्गोऽयमुदाहृतः।
संक्षेपतः सुमनसां विनोदाय भवेद्यदि।।

---

25. इन्दिरागान्धीचरितम्, 6.10

26. वही, 12.9

कलयाऽपि समेधेत मैत्री यद्युभयोरपि।
भारतस्य च शर्मण्यदेशस्य च सतां मता।।
अनुरागः सम्प्रवृद्धिं यायाद्यद्यंशतोऽपि च।
फलेग्रहिः प्रयत्नोऽयं मम कामं भविष्यति।।[27]

पद्यशतक में विन्यस्त प्रस्तुत यात्रा वृत्तान्त का प्रारम्भ विश्वमानचित्र पर जर्मनी की अवस्थिति एवं जर्मनवासियों के सामान्य परिचय से होता है-

देशानुरागं परमं वहन्तो मनस्विनो नित्यमुदात्तचित्ताः।
हृष्टाश्च पुष्टाश्च भृशं च तुष्टास्तरस्विनो यत्र जना विभान्ति।।[28]

जर्मनी प्रवास में वे एक नगर के संगोष्ठी कक्ष में गये जिसके प्रवेशद्वार पर अथर्ववेद का एक मन्त्र एवं अशोक के अभिलेख से गृहीत एक पंक्ति लिखित थे। मार्बुबुर्ग में व्याख्यान प्रस्तुत कर वे अगले दिन जर्मनी की राजधानी बॉन गये जहाँ आकर्षक बहुमंजली इमारतों को देख कर वे कह उठते हैं -

राईनवातानुपभुज्य शीतान् नभःस्थवातानुपभोक्तुकामम्।
भूमिष्ठलोकानवलोक्य कामं द्युलोकजालोकनकौतुकार्थि।।[29]

बॉन से वायुयान द्वारा वे स्टुर्टगार्ट और पुनः हाइडलबर्ग - जहाँ आधुनिक संस्कृत साहित्य पर व्याख्यान होना है, को गये। तदुपरांत वे जर्मनी के प्रमुख प्राचीन शहर टयूबिंगन की यात्रा पर गये और वहाँ भी अपनी विद्वत्ता को व्याख्यान द्वारा प्रस्तुत कर तीन शब्दों -*प्रीतश्च तृप्तश्च सुखस्थितश्च* द्वारा यात्रा की समाप्ति करते हुए पुनः स्टुर्टगार्ड को आये।

प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से सम्पन्न प्रस्तुत काव्य की भाषा सरल एवं सशक्त है। एक लघु यात्रा वृत्तान्त होने के कारण यद्यपि गुरुवर को

---

27. शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति, श्लोक संख्या 96-98

28. वही, श्लोक संख्या 9

29. वही, श्लोक संख्या 18

अपनी काव्यात्मक विलक्षणता प्रदर्शित करने का अवसर यहाँ अपेक्षाकृत कम मिला है तथापि यथोचित स्थान पर वे ऐसा करने में सफल रहे हैं। अलङ्कारशास्त्र की दोनों विधाओं - शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों के सफल प्रयोग द्वारा सहृदयों को वे आनन्दित करते हैं। यथा, वृत्त्यनुप्रास का निम्न प्रयोग -

हृष्टाश्च पुष्टाश्च भृशं च तुष्टाः।[30]

अत्यानुप्रास का निम्न प्रयोग -

अध्यर्धहोरामितवेलयैव सम्प्राप्तवांस् तत्खलु हेलयैव।[31]

उत्प्रेक्षालङ्कार का निम्न प्रयोग -

पुरस्य शोभामिव वीक्षितुं वा तत्कीर्तिमारोपयितुं दिवं वा।
तस्यापि खस्यापि च सेतुभूतं दूराभिलक्ष्यं भवनं सुरम्यम्।।[32]

उपमालङ्कार का निम्न प्रयोग -

चकास्ति तत्रैव महाविशालं शालद्रुमाकारवदभ्रचुम्बि।
द्वात्रिंशता भूमिवरैरुपेतं भालं पुरस्येव नितान्तशोभि।।[33]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह कृति काव्य दृष्टि से पूर्ण एक यात्रा-वृत्तान्त है। जैसाकि इसके भूमिका भाग में Publisher's Note के अन्तर्गत श्री गोपाल चन्द्र सिन्हा ने कहा है -

'शर्मण्य देशः सुतरां विभाति' is saturated with sweetness, is full of all poetic charms and is capable of appealing to the sentiments of the people of both the countries."

काव्य की उपर्युक्त महत्ता को देखकर ही श्रीमान् एवं श्रीमती इकलेर ने जर्मन भाषा में इसे अनूदित किया है। अतः जर्मन भाषाविद् भी इसका आनन्द ले सकते हैं।

---

30. वही, श्लोक संख्या 9

31. वही, श्लोक संख्या 27

32. वही, श्लोक संख्या 49

33. वही, श्लोक संख्या 46

थाइदेशविलासम्

1977 में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् द्वारा डॉ. सत्यव्रत शास्त्री की नियुक्ति दक्षिणपूर्वी एशियाई देश थाइलैण्ड के बैंकाक शहर में स्थित चुलालौङ्कौर्न विश्वविद्यालय में हुई जहाँ अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते हुए इन्होंने थाइलैण्ड प्रवास के दौरान अनुभव किए गए विभिन्न विषयों को थाइदेशविलासम् जिसे, थाइदेश से सम्बन्धित संस्कृत में लिखित प्रथम काव्य होने का गौरव प्राप्त है, नामक खण्डकाव्य में निबद्ध किया -

थाइदेशविलासाख्यं स्वान्तःप्रेरणया कृतम्।
थाइदेशमुपेतेन मया काव्यं समासतः।।[34]

काव्य का प्रारम्भ कवि ने थाइलैण्ड के प्रारम्भिक नाम एवं ऐतिहासिक राजवंशावली के उल्लेख से किया है -

श्यामेति नामातिपुराणमस्य ख्यातं पुराणादिषु यद्विहाय।
थाईतिजात्यध्युषितत्वहेतोर्यं थाइलैण्डं कथयन्ति लोकाः।।[35]

उपर्युक्त पद्य से स्पष्ट होता है कि भारत का थाइलैण्ड से प्राचीन काल से ही सम्बन्ध रहा है तभी तो इसका उल्लेख पुराणादि ग्रन्थों में किया गया है। थाइलैण्ड प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति से प्रभावित रहा है अतः इसके कोने-कोने में भारतीय संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। चाहे वह शैव धर्म रहा हो अथवा बौद्ध धर्म, विश्वविश्रुत रामायण की कथा हो अथवा ब्रह्म पूजा की भावना, सभी दृष्टियों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपेण थाइलैण्ड भारतीय संस्कृति का ऋणी रहा है -

रामेति नामात्मनि सन्दधाति राजाऽत्र रामात्प्रति राजमानः।
श्रीरामवत्संश्रयते च वृत्तं श्रीरामवच्चापि जनान् प्रशास्ति।।[36]

---

34. थाइदेशविलासम्, श्लोक संख्या 117

35. वही, श्लोक संख्या 2

36. वही, श्लोक संख्या 10

चतुर्मुखस्यापि च मन्दिराणि श्रीब्रह्मदेवस्य पदे पदेऽत्र।
एकत्र पूजा सुगतस्य भक्त्याऽपरत्र च ब्रह्मण आविरस्ति।।[37]

गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के अनुसार धर्म, राष्ट्र, राजा एवं संस्कृति रूपी चतुष्कोणीय स्तम्भ पर सम्पूर्ण थाइलैण्ड अवस्थित है- *धर्मो राष्ट्रं च राजा च चतुर्थी संस्कृतिस्तथा। एतच्चतुष्टयं प्राहुः थाइदेशस्य लक्षणम्।।*[38] और अपने इस लघु खण्डकाव्य में इन चारों गुणों को वर्णित कर गुरुवर ने अपनी कथा शिल्पकला सम्बन्धी निपुणता का परिचय दिया है। थाइलैण्ड मुख्यरूपेण बौद्ध धर्म से प्रभावित है अतः यहाँ सर्वत्र भगवान् बुद्ध के मन्दिर एवं भिक्खु (बौद्धभिक्षु) देखे जाते हैं -

शान्ताकृतेः शाक्यमुनेरपूर्वां मूर्तिं शुभां मारकतीं दधाना।
भक्तैर्भृता सन्ततमेव सद्भिर्विराजते यत्र विहारभूमिः।।[39]

एक राष्ट्र के रूप में थाइलैण्ड की पहचान इसकी प्राकृतिक छटाओं के लिए है। सच तो यह है कि विश्व मानचित्र में थाइलैण्ड मानों प्रकृति की गोद में ही स्थित है। पत्तया नामक सामुद्रिक पुलिन(Sea-Beach) का वर्णन करते हुए गुरुवर कहते हैं -

यद् द्रष्टुमापतति सर्वत एव लोको यद्रामणीयककथाश्रुतिसम्प्रणुन्नः।
यत्सैकते विलुठितुं च मुदाभिलष्यत्यन्यच्च सर्वमपि विस्मरति प्रसन्नः।।[40]

थाइदेशविलासम् में गुरुवर ने स्थानीय राजवंश, विशेषकर वर्तमान चक्री राजवंश, के राजाओं का वर्णन कर अपनी ऐतिहासिक विद्वत्ता का परिचय दिया है -

भूतानि पञ्चेव चकाशिरेऽत्र पञ्च प्रसिद्धा भुवि राजवंशाः।
निवेशयामास पुरीमिमां श्रीरामाधिबद्याख्यनृपो मनोज्ञाम्।।[41]

थाइलैण्ड के सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र में हिन्दू संस्कृति का

---

37. वही, श्लोक संख्या 12
38. वही, श्लोक संख्या 61
39. वही, श्लोक संख्या 19
40. वही, श्लोक संख्या 101
41. वही, श्लोक संख्या 79

प्रभाव देखने को मिलता है। चाहे वह रोजमर्रा की सामाजिक गति-विधियाँ हो अथवा स्थानीय कलाकृतियाँ या लोकनृत्य, सभी स्थलों पर हिन्दू संस्कृति, खासकर बौद्ध एवं रामायण संस्कृति अपनी छाप छोड़े हुए है -

परित इमं रचितानि बौद्धाख्यानोपजीव्यानि।
नानावर्णैर्भित्तिषु चेतश्चित्राणि कर्षन्ति।। [42]
रामायणं दृष्टिपथं प्रयाति रुचिर्जनानां प्रबलाऽत्र चित्रम्।
तस्य प्रयोगा अतिकौशलेन कर्षन्ति चेतांसि बलाज्जनानाम्।। [43]

काव्यात्मक दृष्टि से देखने पर यद्यपि प्रस्तुत काव्य में यत्र-तत्र थाई शब्दों के प्रयोग देखने को मिलते हैं फलतः भाषा प्रवाह में थोड़ी रुकावट अवश्य दिखाई पड़ती है। लेकिन इसे भी इस कारण प्रशंसनीय माना जा सकता है कि थाइ भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द परिवर्तित रूप में देखने को मिलते हैं। काव्य में अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कारों के प्रयोग से रोचकता आयी है। यथा, अनुप्रास अलङ्कार का उदाहरण -

लोकाभिरामो नवमोऽस्मि रामः क्रोधस्य यत्रास्ति सदा विरामः। [44]

शृङ्गार रस का प्रयोग इस प्रकार किया गया है -

थाइस्त्रीणां सम्प्रख्यातं रूपं पृथ्व्यां सर्वत्रैव।
तन्वङ्ग्यस्ता गौराकाराः शोभा तासां चित्रैवास्ति।।
चाग्मय्यां ताः कामिन्यतुभूयो रूपं चित्ताकर्षि।
आविभ्रत्यां नेत्रद्वन्द्वतृप्तिं तन्वन्त्यायातानाम्।। [45]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एक खण्डकाव्य के रूप में थाइदेशविलासम् काव्यात्मक गुणों से पूर्ण है। जैसाकि भूमिका भाग में भूमिकाकार विसुध बुस्यकुल ने लिखा है -

> "The Thāi-deśa Vilāsa is beautiful poem, valuable as a work of art, useful as an introduction to Thailand for foreigners".

---

42. वही, श्लोक संख्या 113
43. वही, श्लोक संख्या 49
44. वही, श्लोक संख्या 3
45. वही, श्लोक संख्या 115-116

श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्

साहित्यिक दृष्टि से समस्त द.पू. एशियाई देशों के बीच एकता एवं समन्वय स्थापित करने वाली रामायण की कथा का प्रभाव थाइलैण्ड पर भी देखने को मिलता है जिसका वर्णन गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने अपनी कृति श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् में किया है। लगभग दस वर्षीय थाइलैण्ड प्रवास के दौरान स्थानीय साहित्यिक एवं लोक-कथाओं में प्रचलित पुरुषोत्तम राम की कथाओं का गहन अध्ययन कर गुरुवर ने अपने जीवन की जिस अमूल्य रचना को कार्यरूप दिया उसने न केवल इनकी चिराकाङ्क्षित अभिलाषा की पूर्ति की अपितु विश्व के समस्त रामभक्त बुद्धिजीवियों को एक अनोखी राकमथा से आनन्दित भी किया। विद्वत् समाज में इसकी प्रसिद्धि का मूल्याङ्कन इसी से किया जा सकता है कि इस कृति के लिए अब तक देश एवं विदेशों की विभिन्न संस्थाओं द्वारा गुरुवर को दस विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत किया जा चुका है।

25 सर्गों में निबद्ध प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम सर्ग में थाइलैण्ड का सामान्य परिचय एवं वहाँ रामकथा की ऐतिहासिकता, द्वितीय सर्ग में अनोमतन् उपाख्यान, तृतीय सर्ग में श्रीराम के जन्म का वर्णन, चतुर्थ सर्ग मे रावण एवं सीता का जन्म वृत्तान्त, राम-सीता विवाह एवं रामासुर का वर्णन, पाँचवें सर्ग में राम का वनवास गमन एवं जिह्व की कथा, छठे सर्ग में सीताहरण एवं जटायु का वर्णन, सातवें सर्ग में राम एवं हनुमान् की मित्रता, आठवें सर्ग में दरभी की कथा, बलि का वध एवं लङ्कादहन का वर्णन, नवें सर्ग में रावण-स्वप्न एवं राम के शिबिर में दूत भेजने का वर्णन, दसवें सर्ग में बेञ्जकय्युपाख्यान, ग्यारहवें सर्ग में नील एवं हनुमान् की प्रतिस्पर्धा, बारहवें सर्ग में सुवर्णमत्स्या की कथा, तेरहवें एवं चौदहवें सर्गों में मैयराब की कथा, पन्द्रहवें सर्ग में कुम्भकर्ण का वध, सोलहवें सर्ग में मलिवग्गब्रह्मा की कथा, सत्रहवें सर्ग में रावण की आत्मा का उपाख्यान, अठारहवें सर्ग में महीपाल देवासुर की कथा, उन्नीसवें सर्ग में लङ्का में हुए उपद्रव का वर्णन, बीसवें सर्ग में सीता निर्वासन की कथा,

इक्कीसवें सर्ग में लव जन्म की कथा, बाइसवें सर्ग में लव एवं मंकुट का राम से मिलन, तेईसवें एवं चौबीसवें सर्गों में सीता का पाताल लोक गमन एवं पच्चीसवें तथा अन्तिम सर्ग में राम एवं सीता के मिलन की कथा वर्णित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि थाइ रामायण की मूल कथा वाल्मीकि रामायण की घटनाओं से प्रभावित है लेकिन अवान्तर कथाएँ परिवर्तित रूप में सामने आती हैं। लेखक ने मूल कथा एवं अवान्तर कथा के बीच इस प्रकार से तारतम्य एवं सामञ्जस्य स्थापित किया है कि दोनों एक दूसरे से पूर्णतः गुम्फित दिखाई देती हैं। घटनाएँ एक के बाद एक स्वाभाविक रूप से घटती चली जाती है फलतः पाठक को इन्हें हृदयङ्गम करने में दिमागी कसरत नहीं करनी पड़ती। सच तो यह है कि यहाँ कथाप्रवाह समतल मैदान में प्रवाहित नदी के समान सहजरूपेण अबाध गति से अग्रसरित होता हुआ पाठकों को आनन्दित करता है -

अकृष्टपच्यं खलु यत्र सस्यं रम्यास्तथा शाद्वलभूमिभागाः।
मन्दं प्रवान्तश्च यदीयवाता आगन्तुकानां रमयन्ति चेतः।।[46]

श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् की एक विशेषता है कि कवि ने यहाँ सहजता से सरल से सरलतम उदाहरणों द्वारा कठिन से कठिनतम तथ्य को भावगम्य बनाया है। जैसे - सांख्य दर्शन के मूल सिद्धांत को लौकिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं -

यदि याति लता स्वयमेव तरुं यदि याति नदी च तथा जलधिम्।
नहि तत्र विचित्रमिति प्रकटं प्रकृतिः पुरुषं स्वयमेति यतः।।[47]

अपने अन्य काव्यों की तुलना में प्रस्तुत काव्य में गुरुवर को अपनी विद्वत्ता प्रदर्शन का अधिक अवसर प्राप्त हुआ है अतः इस सुअवसर को उन्होंने व्यर्थ न जाने देकर इसका सदुपयोग करते हुए कृति को सभी काव्यात्मक अलङ्करणों से अलङ्कृत किया है। प्रसाद

---

46. *श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 1.4*

47. *वही, 10.28*

एवं माधुर्य गुणों से उपबृंहित इसका प्रारम्भ जहाँ इन्द्रवज्रा छन्द से किया गया है -

अस्त्येशियानामनि सुप्रसिद्धे द्वीपे विशालेऽतिविशालकीर्तिः।
आग्नेयदिङ्मण्डलमौलिभूतो देशोऽतिरम्यो भुवि थाइलैण्डः।।[48]

वहीं अन्त, रामसीता के पुनर्मिलन रूप में प्रहर्षिणी छन्द में,

आजह्ने प्रयतपरिग्रहद्वितीयः
काकुत्स्थो विविधमखान् स दक्षिणाढ्यान्।
आराध्य प्रकृतिजनान्निजांश्च कामं
लोकेऽस्मिन्विमलतमामवाप कीर्तिम्।।[49]

यथास्थान शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों का भी कवि ने प्रभावी प्रयोग किया है। यथा - हनुमान् एवं मैयराब के बीच युद्ध प्रसंग में अनुप्रास एवं यमक का निम्न प्रयोग -

दण्डादण्डि मुष्टीमुष्टि दन्तादन्ति कचाकचि।
हनुमन्मैयराबौ तौ न्ययुद्ध्येतां परस्परम्।।[50]

प्रस्तुत काव्य में वीर,शृङ्गार, शांत आदि रसों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। यथा - वीर रस का निम्न प्रयोग-

प्रज्वलत्क्रोधताम्राक्षो बालसूर्य इवापरः।
ओजस्विनीं तदा तत्र गिरमेवं समाददे।। [51]

शृङ्गार रस का उदाहरण -

अन्योन्यचुम्बनपरौ रतिकर्मसक्तौ
सम्प्रापितौ मनसिजेन दशां विचित्राम्।
आनन्दसागरतरङ्गपरम्परासु
प्रेङ्खोलितौ सममुभौ रजनीं व्यनैष्टाम्।।[52]

---

48. वही, 1.1
49. वही, 25.31
50. वही, 14.66
51. वही, 22.62
52. वही, 12.50

श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् की एक प्रमुख विशेषता है - इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण। इसमें लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार की घटनाओं का समन्वय किया गया है। अतः पात्र भी लौकिक एवं अलौकिक प्रकार के हैं। अलौकिक पात्रों में - भगवान् शिव, नारायण, लक्ष्मी आदि का वर्णन है जिनमें प्रमुखता शिव को दी गई है- *प्रभोर्वाक्यं महेशस्य न कदाप्यन्यथा भवेत्।*[53] अपने ऊपर आसन्न संकटों को दूर करने के लिए देवगण सर्वदा भगवान् शिव की शरण में जाते हैं और भगवान शिव इसे दूर करने का दायित्व नारायण को देते हैं-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
भवान् दशरथापत्यं भवत्विति मतिर्मम।। [54]

इस प्रकार नारायण का आगमन राम के रूप में लोक जगत् में होता है और वे अपने सहायकों की सहायता से उद्देश्यपूर्ति में सफल होते हैं। राम के सहायकों में हनुमान् को एक ऐसे शिष्य के रूप में वर्णित किया गया है जो सर्वदा, सर्वप्रकारेण राम की सेवा में उपस्थित रहता है। इसके लिए वह एक नहीं, दो-दो बार कलङ्कदायी असत्य वचन का भी सहारा लेता है क्योंकि उसके लिए प्रभु की आज्ञा का पालन ही मुख्य कर्तव्य है। चाहे वह सेतु का निर्माण हो या लङ्का का दहन, कुम्भकर्ण का वध हो या रावण की आत्मा का प्रसङ्ग, अश्वमेध यज्ञ की सफल समाप्ति हो अथवा सीता मिलन की कपटपूर्ण चाल, सर्वत्र हनुमान् की उपस्थिति अपेक्षित है। सच तो यह हैं कि काव्य में हनुमान् के चरित्र द्वारा राम का चरित्र आच्छादित दिखाई देता है। किसी भी कार्य की परिणति हेतु वे हनुमान् का सहारा लेते दिखाई देते हैं -

प्रियोऽसि मे त्वं कुरु तत् सखेदं कुरु प्रसन्नं ननु मां सखेदम्।
सदैव सप्रत्ययमस्ति चेतस्त्वय्येव मद्भक्तवरे हनूमन्!।। [55]

---

53. वही, 3.19
54. वही, 3.10
55. वही, 24.19

काव्य के सभी पात्र अपने-अपने दायित्वों को कर्त्तव्य भावना से निभाते दिखाई पड़ते हैं -

एवं स्थिते किं करवाणि किं वा ब्रवाणि किं वा खलु चिन्तयानि।
धर्मस्य लोपो न भवेद्यथा मे प्रवर्तितव्यं मयका तथाऽत्र।।[56]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलौकिक एवं लौकिक घटनाओं से युक्त प्रस्तुत महाकाव्य एक श्रेष्ठ कोटि की कृति है। इसकी प्रसिद्धि का मूल्याङ्कन इसी से किया जा सकता है कि 12 वर्षों के प्रकाशन में ही अब तक इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं और भारत की तीन भाषाओं - कन्नड़, हिन्दी एवं असमिया (सम्प्रति तमिल में इसका अनुवाद चल रहा है) तथा दो विदेशी भाषाओं - थाई एवं अंग्रेजी में इसका अनुवाद हो चुका है। थाईवासियों के विषय मे कथित निम्न पद्यांश गुरुवर एवं राम कथा के बीच सम्बन्ध के विषय में यथार्थतः चरितार्थ होता है -

आत्मीयभावः परिलक्ष्यतेऽत्र रामायणेऽन्यत्र सुदुर्लभो यः।
दृश्यानि नाना विविधस्थलेषु तस्मात्पुरा शिल्पिभिरङ्कितानि।।[57]

पत्रकाव्यम्

आधुनिक संस्कृतज्ञों ने परम्परागत काव्य रचना की श्रेणी से हटकर नवीन विधा में काव्यों की रचना कम ही की है। पत्रकाव्यम् इस दृष्टि से एक अनोखा काव्य है जिसमें गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा अबतक लिखित विभिन्न पत्रों का एकत्रीकरण किया गया है। इसमें चार प्रकार के पत्र हैं - विभिन्न संस्कृत विद्वानों को लिखे गए 83 पत्र प्रथम भाग में, 15 अभिनन्दन पत्र द्वितीय भाग में, 11 अभिभाषण पत्र तृतीय भाग

---

56. वही, 13.63

57. वही, 1.36

में तथा 15 प्रकीर्ण पत्र चतुर्थ एवं अन्तिम भाग में। काव्य का प्रारम्भ गुरुवर ने अपने पूज्य पिताजी को लिखे गए पत्र से किया है जिसमें चपलतावश किए गए किसी कार्य हेतु क्षमायाचना है-

बालचापलमभूदिह यन्मे क्षान्तमेव तदिति प्रमुदे मे।
वायुनाऽपि बलवत्प्रविधूता: सङ्किरन्ति तरव: कुसुमानि।।[58]

कथानक की परिधि से बँधे न होने के कारण पत्रकाव्यम् लेखक की चारित्रिक विशेषताओं एवं व्यक्तित्व मूल्याङ्कन का आधार है। इसमें सम्पादित विभिन्न पत्रों के देखकर ऐसा अनुभव होता है मानो गुरुवर विभिन्न परिस्थितियों में बहुविध विषयों पर उत्पन्न मनोगत भावनाओं को परिवारजनों एवं बन्धुजनों के समक्ष प्रत्यक्षत: अनुपस्थित रहकर भी उनके समक्ष साक्षात्रूपेण उपस्थित होकर उनके सुख-दु:ख का अनुभव कर रहें हैं। यथा, डा. कृष्णलाल की अस्वस्थता पर लिखित पत्र-

रुजाक्रान्तांस्तु विज्ञाय भवतो व्यथितोऽस्म्यहम्।
शरीरकष्टं कष्टाय भवेदिष्टस्य सर्वथा।।[59]

इन्दौर के डा. प्रभाकर नारायण कवठेकर को उनके पुत्र के विवाह के उपलक्ष्य मे लिखित पत्र -

वर्धापनानि शतश: प्रेषये दूरसंस्थित:।
भवद्बन्धुरहं स्निग्ध: शुभाशंसाश्च भूरिश:।।[60]

जर्मनीवासी श्री पायर महोदय की पत्नी मार्गरिटा की शल्यक्रिया के उपरांत भेजा गया पत्र-

सम्प्रार्थयेऽहं प्रभुमीशमीड्यं निरामयत्वं सुतराममुष्या:।
सम्पादयन्ती सुखिनी गृहस्थविधिं प्रजीव्याच्छरदां शतं सा।।[61]

---

58. पत्रकाव्यम् - पृ. 3.2
59. वही, पृ. 86.3
60. वही, पृ. 76.2
61. वही, पृ. 101.3

सुख दु:ख की परम्परा का चित्रण करते हुए कहा गया है -

संयोगकाले मनसि प्रहर्षो वियोगकाले सुमहच्च दु:खम्।
सुखस्य दु:खस्य परम्परैषा चित्रा विचित्रा विहिता विधात्रा ।। [62]

भाषा एवं शैली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य उत्तम कोटि का कहा जा सकता है। इसमें शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग है। यथा - उपमालङ्कार का निम्न उदाहरण

आसाद्य वेतालपराजयाख्यं नाट्योत्तमं माति न मे मुदन्त:।
अब्धौ यथा चन्द्रमरीचिलाभे वीचीतरङ्गाकुलिते जलौघ:।। [63]

अनुप्रास एवं मुद्रालङ्कार का निम्न उदाहरण देखा जा सकता है -

रुचिराकृतिभि: कृतिभि: कृतिभि: परिपुष्टतमाभिरलङ्कृतिभि:।
कृतमस्ति विलक्षणबुद्धिगुणै: रुचिरं कविकर्म भवद्भिरिदम्।। [64]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक नवीन काव्य परम्परा के सृजन की दृष्टि से पत्रकाव्यम् उस करदीप की तरह है जिसे आधार बनाकर नवीन लेखक इस क्षेत्र को और आगे ले जा सकते हैं। तभी लेखक का प्रयास पूर्णरूपेण सफल समझा जाएगा।

आलोचनात्मक लेखन के रूप में गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने अब तक निम्न 6 ग्रन्थों की रचना की है-

1. *Essay on Indology,* Meharchand Lacchmandas, Delhi, 1963.
2. *The Rāmāyaṇa – A Linguistic Study*; Munshiram Manoharlal, Delhi, 1964.
3. *Studies in Sanskrit and Indian Culture in Thailand,* Parimal Prakashan, Delhi, 1982.
4. *Kālidāsa in Modern Sanskrit Literature*, Eastern Book Linkers, Delhi, 1991.

---

62. वही, पृ. 236.7
63. वही, पृ. 60.21
64. वही, पृ. 23[illegible]

5. *New Experiments in Kālidāsa: Plays*, Eastern Book Linkers, Delhi, 1994.
6. *Studies in the Language and the Poetry of the Yogavāsiṣṭha* (In the Press).

इन ग्रंथों के अतिरिक्त गुरुवर ने A.A. Macdonell द्वारा रचित *Vedic Grammar for Students* का छात्रों के लिए हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर जहाँ अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद कला का अनुपम दृष्टान्त रखा है वहीं इन्होंने सुभाषितसाहस्त्री (Thousand Pearls From Sanskrit Literature) नामक ग्रन्थ में संस्कृत साहित्य के महत्वपूर्ण एक हजार सुभाषितों का हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत कर संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी - तीनों भाषाओं पर अपनी मजबूत पकड़ द्वारा सहृदयों को भाषा की त्रिवेणी में रसाप्लावित किया है।

सारस्वत साधना में अनवरत लीन गुरुवर की उर्वरा मस्तिष्क एवं सशक्त लेखनी का परिचय वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण, भाषाविज्ञान, साहित्य, दर्शन, नाटक आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों में इनके द्वारा लिखित प्राक्कथनों एवं शोध-पत्रों से भी मिलता है। इन्हें अबतक 76 पुस्तकों का प्राक्कथन लिखने का श्रेय प्राप्त है।[65] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन्होंने पहला प्राक्कथन 1448 ई. में अपने पूज्य गुरु पण्डित शुकदेव झा जी द्वारा लिखित पुस्तक भूषणसारप्रवेशः के लिए लिखा। साहित्य जगत् में शिष्य द्वारा लिखित पुस्तक का प्राक्कथन गुरु द्वारा लिखने के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है लेकिन शायद ही ऐसा उदाहरण मिलता होगा जहाँ शिष्य ने गुरु द्वारा लिखित पुस्तक का प्राक्कथन लिखा हो और वह भी विद्यार्थी जीवन में ही।

इनके द्वारा लिखे गए प्राक्कथनों के अवलोकन से इनकी द्विविध प्रतिभा दृष्टिगत होती है। प्रथमतः परिसीमा से बन्धित होने के बावजूद इन्होंने यत्र-तत्र इसे शोध प्रपत्र जैसा प्रारूप दिया है तो अन्यत्र अल्प शब्दों में सम्पूर्ण ग्रन्थ के निचोड़ को वर्णित कर गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है।

---

65. द्रष्टव्य, परिशिष्ट I

1956 ई. में Indian Culture in the Light of Sanskrit Language नामक शोध प्रपत्र से गुरुवर ने शोधपरक लघु विषयों को अन्वेषित एवं विवेचित करने की जिस परम्परा का शुभारम्भ किया वह आजतक इनकी विद्वत्ता को प्रस्फुटित करती आ रही है। अबतक इन्होंने देश एवं विदेशों में आयोजित विभिन्न संगोष्ठियों में 122 शोध प्रपत्रों को प्रस्तुत किया है।[66] इन शोध प्रपत्रों पर दृष्टि डालने से अवगत होता है कि इन्होंने छोटे से छोटे विषयों को भी अपनी लेखनी द्वारा सशक्त एवं अतिरोचक बनाया है, जो इनकी सूक्ष्म एवं पारखी दृष्टि का द्योतक है।

गुरुवर डॉ. सत्यव्रत शास्त्री की विद्वत्ता से प्रभावित होकर जहाँ भारत के विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों ने इन्हें व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया वहीं अफ्रीका महादेश को छोड़कर विश्व के सभी महादेशों के विभिन्न देशों में व्याख्यान प्रस्तुत कर इन्होंने प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का मानों शङ्खनाद किया है।[67]

गुरुवर की उपर्युक्त बहुआयामी दृढ़ उपलब्धियों के फलस्वरूप इनकी कीर्ति विद्वत्समाज में सहजरूपेण विस्तृत होती चली गयी एवं इनके द्वारा की गई संस्कृत सेवा को देख देश एवं विदेशों के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं ने अबतक इन्हें निम्न 48 विभिन्न पुरस्कारों एवं उपाधियों से सम्मानित किया है –

क्र०	पुरस्कार एवं उपाधि	प्रदत्त संस्था एवं वर्ष
1.	साहित्य अकादमी पुरस्कार	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1968
2.	साहित्य कला परिषद् सम्मान	दिल्ली प्रशासन, 1974
3.	दिल्ली सिक्ख गुरुद्वारा सम्मान	दिल्ली सिक्ख गुरुद्वारा बोर्ड, 1974
4.	रायल नेपाल एकेडमी सम्मान	रायल नेपाल एकेडमी, काठमांडु, नेपाल 1979
5.	राष्ट्रीय व्याख्याता सम्मान	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 1982-83
6.	संस्कृत सम्मान प्रमाण पत्र	भारत सरकार, 1985

66. द्रष्टव्य, परिशिष्ट 2
67. द्रष्टव्य, परिशिष्ट 4

क्र० पुरस्कार एवं उपाधि	प्रदत्त संस्था एवं वर्ष
7. मेडालियन आफ हॉनर	कैथोलिक विश्वविद्यालय, ल्यूवेन, बेल्यिजम 1985
8. शिरोमणि संस्कृत साहित्यकार पुरस्कार	पंजाब सरकार, 1985
9. विशिष्ट संस्कृत साहित्य पुरस्कार	संस्कृत एकेडमी, लखनऊ,उत्तरप्रदेश,1988
10. नौवाँ गीता रत्न पुरस्कार	गीता आश्रम, नई दिल्ली, 1991
11. संस्कृत सेवा सम्मान	संस्कृत एकेडमी, दिल्ली सरकार,1992
12. लिटररी एवार्ड इन संस्कृत	भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता,1992
13. इन्दिरा बहेरे स्वर्ण पदक	तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणे, 1992
14. पण्डितराज जगन्नाथ पद्य रचना पुरस्कार	संस्कृत एकेडमी, दिल्ली सरकार,1993
15. फैलोशिप आफ द इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज	ओटावा, कनाडा,1993
16. आनोनरी डाक्टरेट	सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक थाईलैण्ड, 1993
17. सिविल एण्ड एकेडेमिक आथोरेटी आफ इटली फार फॉरेनर्स	इटली सरकार, 1944
18. वाग्देवीभूषण उपाधि	वाङ्मय विमर्श, दिल्ली, 1994
19. कालिदास पुरस्कार	इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज, ओटावा, कनाडा,1994
20. देववाणी सम्मान	देववाणी परिषद, दिल्ली, 1994
21. कालिदास पुरस्कार	संस्कृत एकेडमी, लखनऊ, उत्तरप्रदेश 1994
22. पण्डिता क्षमा राव पुरस्कार	राव, ट्रस्ट, मुम्बई,1994
23. प्रथम अखिल भारतीय पुरस्कार	संस्कृत एकेडमी, जयपुर, राजस्थान, 1995
24. वाचस्पति पुरस्कार	के.के. बिड़ला फाउन्डेशन, नई दिल्ली, 1995
25. दयावती मोदी विश्वसंस्कृति सम्मान	मोदी कला भारती, नई दिल्ली,1995
26. चेस्मीयो (Ceomeo) से विशेष सम्मान	टोरीनो, इटली, 1995
27. योग्यकर्ता जे.के. गजमदं विश्वविद्यालय सम्मान	गजमदह, इण्डोनेशिया,1995
28. शास्त्र चूडामणि विद्वान्	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान सम्मान, नई दिल्ली, 1996

क्र० पुरस्कार एवं उपाधि	प्रदत्त संस्था वर्ष
29. अखिल भारतीय कालिदास पुरस्कार	संस्कृत एकेडमी, मध्य प्रदेश, 1997
30. मानस सम्मान	तुलसी मानस प्रतिष्ठान एवं तुलसी एकेडमी, भोपाल, 1997
31. थाइदेश का राज्यकीय अलङ्करण (Most Admirable Order of the Direk Gunabhom from His Majesty-the king of Thailand)	राजदरबार, थाइलैण्ड, 1997
32. महाराष्ट्र सरकार से सम्मान	महाराष्ट्र सरकार, 1998
33. महामहोपाध्याय की उपाधि	राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति,1999
34. पद्मश्री	भारत सरकार, 1999
35. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से सम्मान	कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा, 1999
36. दिल्ली संस्कृत एकेडमी से सम्मान	संस्कृत एकेडमी, दिल्ली, 1999
37. विद्यावाचस्पति की उपाधि	गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर हरिद्वार, उत्तरांचल, 1999
38. महामहोपाध्याय पण्डित नवल किशोर काङ्कर संस्कृत सेवा सम्मान	महा. पण्डित नवल किशोर काङ्कर संस्कृत सेवा परिषद्, जयपुर, राजस्थान, 1999
39. मानद डाक्टरेट की उपाधि	ओरादाया विश्वविद्यालय, ओरादया, रोमानिया, 2001
40. उत्कृष्टता प्रमाण पत्र	स्पीरू हारेत विश्वविद्यालय, वलचा, रोमानिया, 2001
41. सम्मान पत्र	मिहाई एमीनेस्को, अन्तर्राष्ट्रीय एकेडमी, बुखारेस्ट, रोमानिया, 2001
42. उत्कृष्टता प्रमाण पत्र	बीब्लीयोटेक जुडेटेना, रोमानिया, 2001
43. गोल्डेन प्राइज	द इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवांस्ड एशियन स्टडीज, टोरीनो, इटली, 2001
44. वेद शास्त्र विशारद की उपाधि	मठ, उडुपी , 2002
45. रामकृष्ण जयदयाल डालमिया श्रीवाणी अलङ्करण	आर. जे. डालमिया ट्रस्ट, नई दिल्ली 2002
46. विद्या मार्तण्ड (D. Lit.) उपाधि की उपाधि	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तरांचल, 2002
47. महाकवि कालिदास संस्कृत जीवनव्रती पुरस्कार	कवि कुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक, महाराष्ट्र

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इनका सम्बन्ध भारत के एकमात्र ऐसे परिवार से है जहाँ पिता (डॉ. पण्डित चारुदेव शास्त्री) पुत्र (डॉ. सत्यव्रत शास्त्री) तथा पुत्रवधू (डॉ. उषा सत्यव्रत) तीनों को भारत के राष्ट्रपति द्वारा सम्मान पत्र तथा पिता एवं पुत्र दोनों को पंजाब सरकार द्वारा शिरोमणि संस्कृत साहित्यकार पुरस्कार तथा संस्कृत एकेडमी, उत्तरप्रदेश द्वारा विशिष्ट संस्कृत साहित्य पुरस्कार प्राप्त है। सच तो यह है कि आपका सम्पूर्ण परिवार ही संस्कृत वाङ्मय को समर्पित है।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा
रचित सूक्तियों का संग्रह

अ

: 1 :

अग्रे सरत्येव जगत् स्वगत्या स्वभाव एवास्ति हि तादृशोऽस्य।
जङ्गम्यतेऽतो जगदित्युदारा व्युत्पत्तिरेवार्थममुं व्यनक्ति।।

जगत् आगे चलता ही जाता है। इसका स्वभाव ही इस प्रकार का है। जङ्गम्यते (चलते ही जाना) जगत् शब्द की इस समुचित व्युत्पत्ति से ही इसका यह अर्थ स्पष्ट है।

: 2 :

अघटितं घटयेत् प्रबलो विधिः सुघटितं घटयेच्च स दुर्घटम्।

प्रबल भाग्य असम्भव को सम्भव बना देता है और बने हुए (कार्यों) को बिगाड़ देता है।

: 3 :

अज्ञानहेतोर्बहु कर्म लोकेऽनौचित्यपूर्णं क्रियते जनेन।

संसार में मनुष्य अधिकांश गलतियाँ अज्ञानवश करता है।

: 4 :

अज्ञानेनान्याय्यं भूयो लोकः कुर्यात् कृत्यं लोके।
पश्चात्तापो येनास्य स्याद् दुःखं चित्ते प्रादुःष्याच्च।।

प्रायः मनुष्य लोक में अज्ञानवश अन्याय्य कर्म करते हैं जिससे उन्हें पश्चात्ताप होता है और चित्त में दुःख।

---

1. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।
2. इन्दिरागान्धीचरितम्, 12/16
3. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 13/53
4. वही, 5/27

: 5 :

अतस्तात प्रकर्तव्यो यथाशक्ति परिश्रमः।
कृतेऽतिक्रम्य शक्तिं स शरीरं सादयेन्ननु॥

परिश्रम अपने सामर्थ्य के अनुसार ही करना चाहिए। सामर्थ्य से बढ़कर किया गया परिश्रम निःसन्देह शरीर को दुर्बल बना देता है।

: 6 :

अतिचित्रं ननु धातृचेष्टितम्।

विधाता की माया निश्चयरूपेण अत्यन्त विचित्र है।

: 7 :

अतिथौ सर्वदेवानां निवास इति भावना।
सर्वेषां भारतीयानां न सन्देहोऽत्र कश्चन॥

''अतिथि में समस्त देवताओं का वास है'' - यह सभी भारतीयों की भावना है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

: 8 :

अनर्थमेकः कुरुते तदीयं फलं तु तत्पृष्ठचरोऽपि भुङ्क्ते।

अनर्थ करने वाला तो एक ही होता है, परन्तु उसका फल उसके अनुयायी भी भोगते हैं।

: 9 :

अनधिगतसहायो याचकत्वं प्रपन्नः
स्मरति सुहृदमर्थी ह्यर्थवन्तं विपन्नः।

विपत्तिग्रस्त पुरुष अन्य सहायता न मिलने पर याचक बनकर अपने धनी मित्र का स्मरण करता है।

---

5. पत्रकाव्यम्, पृ. 154/6
6. इन्दिरागान्धीचरितम्, 19/25
7. अप्रकाशितपत्रम्, श्री मां. पां. डेग्वेकरं प्रति 17.3.1995 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।
8. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 1/59
9. वही, 13/30

: 10 :

अनवहितपरार्थाः स्वार्थमेवाश्रयन्तः
कथमिह न सशोका लज्जिताः सन्त्वसन्तः।

परोपकार की ओर ध्यान न देने वाले (एवं) स्वार्थमात्र सिद्ध करने वाले असज्जन दुःखी एवं लज्जित कैसे न हों?

: 11 :

अनौचित्यकृता दोषा उद्वेगायैव केवलम्।

अनौचित्यमूलक दोषों से केवल उद्वेग ही होता है।

: 12 :

अपूज्यपूजाविधिराश्रितः सन् श्रेयःप्रतीघातमवातनोति।

जो आदर के योग्य नहीं है उन्हें यदि आदर दिया जाता है तो इस प्रकार का आचरण कल्याण में बाधा पहुँचाता है।

: 13 :

अबला वा कृशकाया वा कथञ्चिदपि नैव जनाः।
रोद्धुं शक्या दृढसङ्कल्पाः प्रबलानि गिरिणदीजलानि यथा॥

मनुष्य चाहे निर्बल हों अथवा दुबले पतले, यदि उनका संकल्प दृढ है तो उन्हें उसी प्रकार नहीं रोका जा सकता जिस प्रकार पहाड़ी नदी के तेज जलों को।

: 14 :

अबलां समवेक्ष्य मानसं यमिनामप्यबलं प्रजायते।

अबला नारी को देख ऋषि मुनियों का मन भी निर्बल हो जाता है।

---

10. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/86
11. पत्रकाव्यम्, पृ. 80/2
12. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
13. इन्दिरागान्धीचरितम्, 9/21
14. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 20/60

: 15 :

अर्थिनं खलु विदध्युरुदारबुद्धयो जगति नैव निराशम्।

जगत् में उदारमति व्यक्ति याचकों को निराश नहीं करते हैं।

: 16 :

अल्पोऽपि शत्रुर्न भवेदुपेक्ष्यः।

कमजोर शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

: 17 :

अलौकिकानां खलु सर्वमेव ह्यलौकिकं स्यादिति नात्र चित्रम्।

"अलौकिक जनों में सब कुछ अलौकिक ही होता है" - इसमें आश्चर्य नहीं।

: 18 :

अवश्यकार्ये कार्ये स्यान्न विलम्बः सुखावहः।

जिस कार्य को अवश्य करना होता है उनमें विलम्ब सुखप्रद नहीं होता।

: 19 :

अवश्यकार्येषु न कार्यं एव नृणा विलम्बो हितकामुकेन।

जो अपना हित चाहता है उस व्यक्ति को जो (कार्य) करने ही हों उनमें विलम्ब नहीं करना चाहिए।

: 20 :

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया।
अतस्तेष्वासक्तिर्जगति नहि युक्ता कथमपि।।

विषय भोगों को तो जाना ही है चाहे वे कितनी देर भी बने रहें। इसलिए इस संसार में उनके प्रति आसक्ति किसी रूप में भी उचित नहीं है।

---

15. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/19
16. पत्रकाव्यम्, पृ. 136/62
17. इन्दिरागान्धीचरितम्, 9/25
18. अप्रकाशितपत्रम्, श्री प्रकाशचन्द्रमिश्रान् प्रति 7.9.2002 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
19. अप्रकाशितपत्रम्, आचार्य चंद्रदीप शुक्लान् प्रति 21.02.2000 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
20. पत्रकाव्यम्, पृ. 96/8

: 21 :

अविवेकः परमापदां पदम्।

बेसमझी मुसीबतों का घर है।

: 22 :

असामान्यचरित्रा नो चेष्टरेन् प्राकृता इव।

अलौकिक चरित्र वाले व्यक्ति कभी साधारण मनुष्यों के समान व्यवहार नहीं करते हैं।

: 23 :

असुन्दरे वाऽप्यथ सुन्दरे वा विशेषतो नामनि नावधेयम्।
गुणप्रकर्षे यतनं विधेयं ज्ञेयं हि तुच्छं किल नामधेयम् ॥

विशेषतया सुन्दर अथवा असुन्दर नाम के विषय में अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। नाम को सारहीन जानकर सद्‌गुणों की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

: 24 :

अहं महानित्यभिमन्य योऽन्यानुपेक्ष्य पापाचरणं करोति।
भवत्यभाग्योपहतः स नित्यं नाप्नोति पूर्णं पुरुषायुषञ्च।

जो व्यक्ति अपने को महान् समझकर दूसरों की अवहेलना द्वारा पाप कर्म करता है, वह भाग्यहीन हो जाता है और पूर्ण आयुष्य का भी उपयोग नहीं करता है।

: 25 :

अहिंसकः कथं कुर्याद् हिंसावृत्तिं विगर्हिताम्।

अहिंसक व्यक्ति निन्दनीय हिंसावृत्ति का कैसे आश्रय ले?

---

21. इन्दिरागान्धीचरितम्, 20/11
22. वही, 21/12
23. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/42
24. वही, 9/14
25. वही, 3/82

: 26 :

अहो धन्यः कश्चिद् वचनरचनाया मधुरिमा
सतां वाचीत्युक्तिः क्वचिदपि मृषा नैव भवति।

"सज्जनों की वाणी में वाक्रचना का अद्भुत माधुर्य होता है" – यह उक्ति कभी असत्य नहीं होती।

: 27 :

अहो भ्रातुरत्रास्ति कीदृङ् महत्त्वं प्रमोदास्पदत्वं तथा दुर्लभत्वम्।
स्त्रियो वाऽऽत्मजा वा प्रियाः सन्तु कामं परं भ्रातरः क्वानुजा वाग्रजा वा॥

अहा! इस संसार में भाई का कितना महत्व है। संसार में भाई की प्राप्ति दुर्लभ होती है, वह हृदय को आनन्द–सम्भृत कर देता है। स्त्रियाँ और पुत्र भी अभीष्ट होते हैं, परन्तु भाई (अनुज या अग्रज) की कहीं तुलना नहीं।

आ

: 28 :

आकारचेष्टादिभिरभ्युपायैः किं नोहतेऽनुक्तमपीह धीमान्।

बुद्धिमान् पुरुष आकार, चेष्टा आदि उपायों द्वारा अकथित कथ्य को क्या नहीं जान लेते हैं?

: 29 :

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं करते।

---

26. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 11/16
27. वही, 5/28
28. वही, 1/77

29. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/32

: 30 :

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।

गुरुओं की आज्ञा अविचारणीय होती है।

: 31 :

आज्ञा प्रभूणां ह्यविचारणीया।

स्वामी की आज्ञा अविचारणीय होती है। (अर्थात् उसपर सोच विचार नहीं करना होता। उसका तो पालन ही करना होता है)

: 32 :

आत्मोपमं दुःखसुखं परेषामपीक्षते यः स महान् मनुष्यः।
स एव राजा स्पृहणीयकीर्तिधर्मस्य तत्त्वं च स एव वेद॥

महान् व्यक्ति वही होता है, जो अपने समान ही दूसरों के सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार की सहानुभूति रखने वाले राजा की कीर्ति स्पृहणीय होती है और वही धर्म के रहस्य को पहचानता भी है।

: 33 :

आत्मैव नामात्मज उक्तपूर्वः श्रुतौ।

(शास्त्र मे) पहले ही कहा गया है कि (पिता) स्वयं ही पुत्र रूप में जन्म लेता है।

: 34 :

आप्तस्य वृत्तमवगत्य भवेन्न कस्य स्निग्धस्य चेतसि जनस्य मुदः प्रकर्षः।

विश्वस्त (आत्मीय) जन का समाचार पाकर किस स्निग्ध व्यक्ति के चित्त में आनन्दोत्कर्ष नहीं होता?

---

30. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/20
31. वही, 25/24
32. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/15
33. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 13/49
34. पत्रकाव्यम्, पृ. 40/1

: 35 :

आयव्ययक्षययुता नचिरप्रभावा भावा विभान्त्यनुपदं पतनस्वभावाः।
संसार के पदार्थों की उत्पत्ति एवं विनाश होता रहता है। इनका प्रभाव थोड़े समय तक रहता है। अन्त में नष्ट हो जाना ही इनकी प्रकृति है।

इ

: 36 :

इन्दोः कराणां प्रसरेण विष्वक् स्यादुत्सवः कैरवकाननस्य।
चारों ओर चन्द्रमा की किरणों का फैलना कुमुदवन के लिए उत्सव होता है।

: 37 :

इष्टस्य पुंसः पुनरागमो हि दिव्यं कमप्युत्सवमादधाति।
प्रियजन का पुनरागमन एक अपूर्व दिव्य उत्सव को उत्पन्न करता है।

उ

: 38 :

उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु।
कहने का एक विशेष प्रकार काव्य है। भाषा जो हो सो हो।

: 39 :

उदन्तो बन्धुजातस्य न जनं कं हि मोदयेत्।
बन्धुजन का समाचार किसे अह्लादित नहीं करता?

---

35. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,12/12
36. पत्रकाव्यम्, पृ. 22/5
37. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम, 2/34
38, पत्रकाव्यम्, पृ. 229/9
39. वहीं, पृ. 8/1

: 40 :

उन्मादयत्येव विवेकिनोऽपि कष्टो विकारः खलु कामजन्यः।

विषम कामविकार विवेकशील को भी उन्मत्त (किंकर्त्तव्यविमूढ़) बना देता है।

: 41 :

उपकर्ता भवेत्साधुः सदैवापकृतावपि।

सज्जन व्यक्ति अपकार होने पर भी सदा उपकार ही करता है।

: 42 :

उर्वी विशाला विभु चापि विश्वं मार्गा अनेके वितता इह स्युः।

भूलोक विशाल है, संसार भी विस्तीर्ण (व्यापक) है। इसमें अनेक रास्ते खुले हैं।

ए

: 43 :

एवं कृते नैव भवेत्कदापि खेदोऽन्तरङ्गे न च वा विषादः।
कर्त्तव्यबुद्ध्या जनयन्ति तोषं कृतानि कार्याणि निरन्तराणि॥

ऐसा (दत्तचित्त होकर कार्य) करने पर मन में न तो कभी खेद होगा न विषाद। सर्वदा कर्त्तव्यबुद्धि से किए गए कार्य तोषप्रद (संतोषदायक) होते हैं।

---

40. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 7/22
41. वही, 3/59
42. पत्रकाव्यम्, पृ. 28/10
43. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्

: 44 :

एषोऽस्य धर्म इति जातिरथास्य वैषा
वर्णोऽस्य वाऽयमिति वाऽस्य च वेष एषः।
एतादृशः खलु विचारसरण्य एव
प्रादुर्भवन्ति महतां नहि मानसेषु॥

महापुरुषों के मन में इस प्रकार की विचारधाराएँ कभी उत्पन्न नहीं होतीं की इसका यह धर्म है, इसकी यह जाति है, इसका यह रंग है अथवा इसकी यह वेशभूषा है।

ऋ

: 45 :

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।

ऋषियों ने उन्मत्त एवं अहंकारियों की वाणी को राक्षसी वाणी कहा है।

क

: 46 :

कठिनाः खलु स्त्रियः।

निश्चय ही स्त्रियाँ कठोर होती हैं।

: 47 :

कदाचिन्नोपेक्ष्या भवति कमनीया हि रमणी।

सुन्दर स्त्री निश्चयरूपेण सदा अनुपेक्षणीय अर्थात् अभीष्ट होती है।

---

44. इन्दिरागान्धीचरितम्, 15/16

45. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 22/24

46. वही, 20/37

47. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 10/4

: 48 :

कर्तुं न वा कर्तुमथान्यदेव कर्तुं प्रभुः कोऽपि जनो जगत्याम्।
अहं प्रभुश्चेदभिमन्यते यो वृथाभिमानी कृपणः स सत्यम्॥

इस संसार में कोई भी व्यक्ति कुछ करने, न करने या कुछ और ही करने में असमर्थ है। यदि वह समझता है कि मैं ऐसा कर सकता हूँ, तो यह उसका मिथ्याभिमान है। वह व्यक्ति दया का पात्र है।

: 49 :

कर्म श्रेष्ठं विमलमतिभिः सर्वदा कार्यमार्यैः
सर्वत्राऽस्मिञ्जगति कथिता कर्मणैवाऽर्थसिद्धिः।
नार्थो नाम्नाऽशुभमथ शुभं वा भवेत् तन्निकामम्॥

निर्मलमति आर्यजनों को सदा श्रेष्ठ कर्म करना चाहिए। इस संसार में सर्वत्र कर्म द्वारा ही प्रयोजन की सिद्धि बतायी गयी है। (केवल) नाम द्वारा ही अभीष्ट सर्वथा सिद्ध नहीं होता, चाहे वह नाम शुभ हो अथवा अशुभ।

: 50 :

कविब्रुवास्तु सन्त्येव भूरिशो बकवृत्तयः।
सारसानां बहुत्वेऽपि सत्यं हंसाः सुदुर्लभाः॥

इस संसार में बगुले के समान आचरणशील अपने को कवि कहने वाले तो बहुत हैं पर हंस निश्चय ही बहुत कम।

: 51 :

कष्टं परस्यापि विनोद एव येषां जनास्तेऽधमकोटिभाजः।
ये त्वेव भूयो द्रुतमानसास्ते भवन्ति तत्रोत्तमकोटिभाजः।

जिन (मनुष्यों) के लिए दूसरे का कष्ट भी मनोविनोद है, वे अधम

---

48. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
49. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/38
50. अप्रकाशितपत्रम्, पण्डित दुर्गादत्त शास्त्रिणः प्रति 27.9.1996 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।
51. इन्दिरागान्धीचरितम्, 11/7

कोटि के होते हैं और जिनका मन अधिक द्रवित हो जाता है, वे उत्तम कोटि के होते हैं।

: 52 :

कष्टान्यनिष्टानि सहेत नारी बहूनि लोके बहुदुःखदानि।
वैधव्यदुःखं न कदाचिदेव सहेत साऽसह्यतमं तदस्ति॥

संसार में नारी अत्यन्त दुःखदायी कष्टों एवं अनिष्टों को सहन कर लेती है, परन्तु वैधव्य दुःख को वह सहजता से नहीं सहन कर पाती है।

: 53 :

कान्तारभूमिः खलु निर्जलेति प्रायेण लोके प्रथितः प्रवादः।

लोगों में यह प्रवाद (जनोक्ति) प्रचलित है कि कान्तार भूमि प्रायः जलशून्य होती है।

: 54 :

कामात्मता नैव मता प्रशस्ता।

कामुकता प्रशंसनीय नहीं मानी जाती है।

: 55 :

कामी स्वतां पश्यति सत्यमुक्तं कामातुराणां न भयं न लज्जा।

कामातुर (काम भावना से ग्रस्त) सर्वत्र अपना ही अभीष्ट देखता है। सत्य है कि कामार्त पुरुषों को न भय होता है और न लज्जा।

: 56 :

काल्यमेव शयनं विदां वराः शैशवे वयसि शोभनं विदुः।

विद्वानों ने बाल्यावस्था में समय पर सोना ही अच्छा माना है।

---

52. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 24/23
53. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 1/72
54. वही, 9/17
55. वही, 6/17
56. इन्दिरागान्धीचरितम्, 7/15

: 57 :

काव्यं सहृदयैरुक्तं हारि सुग्राह्यमेव च।

सहृदयों (समालोचकों) ने काव्य को आकर्षक और सुग्राह्य कहा है।

: 58 :

काष्ठं च काष्ठं च यथा पयोधौ संयुज्यते चापि वियुज्यते च।
तथैव लोकः स्वयमेव लोके संयुज्यते चापि वियुज्यते च॥

जिस प्रकार एक लकड़ी समुद्र में दूसरी से जा मिलती है और फिर उससे अलग हो जाती है उसी प्रकार लोग इस संसार में मिलते और बिछुड़ते रहते हैं।

: 59 :

किञ्चिन्नैव स्थिरमिह जगत्यस्ति सञ्चारशीले।

प्रायः गतिशील संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रहती है।

: 60 :

किंत्वब्धिवेलेव विलोकनीया धर्माः सतां सन्त्यविलङ्घनीयाः।

सज्जनों का कर्तव्य है कि वे धर्म को सागरवेला के समान जानें और उसका उल्लंघन न करें।

: 61 :

किं स्यान्मृते पुनरिहौषधसम्प्रयोगात्।

मृत्यु हो जाने पर औषधि आदि उपायों (के प्रयोग) का क्या प्रयोजन?

---

57. पत्रकाव्यम्, पृ. 258/13
58. वही, पृ. 236/6
59. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 9/4
60. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/30
61. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/31

: 62 :

कीटात् प्रभृत्यापुरुषं समेषां साधारणः कामविकार एषः।
ये त्वस्य वश्यत्वमुपाश्रयन्ते, भ्रश्यन्ति दुःख्यन्त्यनिशं भृशं ते।।

कीट से लेकर मनुष्य योनि तक सभी में कामविकार समानरूपेण व्याप्त है, किन्तु जो प्राणी इसके अधीन हो जाते हैं वे (अपने मार्ग से) भ्रष्ट हो जाते हैं और सदा के लिए अत्यन्त दुःख भोगते हैं।

: 63 :

कुसमायुधशक्तिरहो! अमिता।

अहो! कामदेव की शक्ति असीम है।

: 64 :

कोकिलविरुतेषु न रुवन्ति किं विहगाः।

जब कोयल कूकती है तो पक्षी क्या चहकते नहीं?

: 65 :

को जानीते विधिविलसितम्।

विधाता की लीला को कौन जानता है?

: 66 :

को विलम्बः समर्थानां नियोज्यानां क्रियावताम्।

समर्थ (शक्तिशाली) एवं कार्यपटु सेवकों के लिए कार्यविलम्ब कैसा?

: 67 :

कृत्यानि तावत्सुतरां कठोराण्युपायसाध्यानि भवेयुरेव।
नोद्योगमात्रं फलसिद्धिहेतुस्तत्रास्त्युपायोऽपि समेषणीयः।।

अत्यन्त कठिन कार्य उपायों से ही सिद्ध हो सकते हैं। केवल परिश्रम

---

62. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 6/26
63. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 10/26
64. पत्रकाव्यम्, पृ. 213/3
65. वही, 10/23
66. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 4/71
67. इन्दिरागान्धीचरितम्, 8/20

ही कार्यसिद्धि का कारण नहीं होता अपितु, उनके लिए उपायों की भी आवश्यकता होती है।

: 68 :

कृशे कस्यास्ति सौहृदम्।

दुर्बल के साथ किसकी मित्रता?

: 69 :

कृशे शरीरे कस्यापि साहाय्यं नोपलभ्यते।

शरीर दुर्बल होने पर किसी की सहायता नहीं मिलती अथवा जब शरीर दुर्बल हो जाता है तो कोई मदद नहीं करता।

: 70 :

क्रममाणा मतिः स्वच्छा न वयःक्रममीक्षते।

बढ़ती हुई स्वच्छ प्रज्ञा उम्र के बढ़ने की अपेक्षा नहीं करती।

: 71 :

क्वचिदपि निजमित्रद्रोहकृन्नैव मृष्यः।

मित्रद्रोही कहीं भी क्षमायोग्य नहीं होते हैं।

: 72 :

क्लेशः फलेनातनुते नवत्वम्।

आयास (कठोर परिश्रम)जब सफल हो जाता है तो वह फिर से ताज़गी ला देता है।

: 73 :

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।

व्यक्ति का यह चिन्तन होना चाहिए कि एक-एक क्षण विद्याभ्यास में लगाया जाए और एक-एक कण बचा कर धन सञ्चय किया जाए।

---

68. पत्रकाव्यम्, पृ. 154/4
69. वही, पृ. 154/5
70. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 3/13
71. वही, 13/74
72. पत्रकाव्यम्, पृ. 106/13
73. पत्रकाव्यम्, पृ. 95/5

: 74 :

क्षमापराः स्निग्धजना भवन्ति।

स्निग्धजन क्षमाशील होते हैं।

: 75 :

क्षमापरा ज्ञानधना भवन्ति।

ज्ञान के धनी क्षमाशील होते हैं।

: 76 :

क्षमा वीरस्य भूषणम्।

क्षमा वीरों का आभूषण है।

: 77 :

क्षमाशीला हि साधवः।

सज्जन क्षमाशील होते हैं।

ग

: 78 :

गहनः कालमहिमा।

काल की महिमा दुर्ज्ञेय है।

---

74. पत्रकाव्यम्, पृ. 35/3
75. अप्रकाशितपत्रम्, डा. रामकिशोर मिश्रान् प्रति 13.2.1994 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
76. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 3/85
77. पत्रकाव्यम्, पृ. 6/5, पृ. 29/3, पृ. 110/2
78. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 10/32

: 79 :

गुणगणेन जनः प्रियतामियात्।

गुणों के द्वारा ही मनुष्य दूसरों का प्यार जीतता (पाता) है।

: 80 :

गुणश्लाघ्ये नित्यं हृदयनिहिते प्रीतिसहिते,
मनः सीदत्येव क्षणमपि वियुक्ते प्रियजने।
जगच्छून्यं भाति प्रदहति च सत्प्रेमरहितं,
जनः प्रेम्णाः युक्तः सततमवियुक्तः सुखमियात्।।

गुणों के कारण श्लाधनीय एवं सदा हृदय में निवास करने वाले प्रेमी इष्टबन्धु के क्षणभर भी वियुक्त हो जाने पर मन व्याकुल हो जाता है, जगत् शून्य लगने लगता है और सच्चे प्रेम से रहित संसार तीव्रता से जलने लगता है। प्रेमपूर्ण तथा सदा अपने प्रेमी के साथ रहने वाला मनुष्य ही सुख पाता है।

: 81 :

गुणा भवन्त्यादरभाजनानि लोके न लिङ्गं न वयश्च सत्यम्।

सच है कि लोक में गुण ही आदर का कारण होता है, लिङ्ग अथवा उम्र नहीं।

: 82 :

गृहस्त्रीसुतश्रीशरीरादि सर्वं पुनश्चापि लभ्यं भवेद् द्रागखर्वम्।
न लभ्यः कदाचिद् ध्रुवं भ्रातृरूपः .... ॥

संसार में घर, स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति शरीर आदि सब कुछ विपुलता से मिल सकता है, किन्तु श्रेष्ठ स्नेही भ्राता का मिलना निश्चय ही दुर्लभ है।

---

79. इन्दिरागान्धीचरितम्, 12/12

80. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 11/6

81. इन्दिरागान्धीचरितम्, 24/55

82. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 5/35

च

: 83 :

चञ्चूर्यमाणो द्रविणाय गृघ्नुः कथं न नश्येदविमृश्यकारी।

धन का लालची अविवेकशील व्यक्ति जब भटकता फिरे तो उसका विनाश क्यों न हो?

: 84 :

चित्राऽस्ति पुंसां मनसो गतिर्नु।

पुरुषों के मन की गति विचित्र होती है।

: 85 :

चित्रो विलासो विधातुः।

विधाता का कार्य विचित्र है।

: 86 :

चिन्ता चित्तार्तिकारिणी।

चिन्ता चित्त को पीडा पहुँचाती है।

: 87 :

चिन्तामणिश्चिन्तितमेव सूते।

चिन्तामणि, जो सोचा हुआ होता है उसे ला देता है।

: 88 :

चिरं गुरौ कार्यविधौ न कार्यम्।

महत्त्वपूर्ण कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

---

83. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 1/64
८4. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 23/24
८5. थाइदेशविलासम्, पृ. 96
86. पत्रकाव्यम्, पृ. 104/4
87. वही, पृ. 178/3

८८. वही, पृ. 27/9

: 89 :

चिराय लब्धा नहि किं प्रवृत्तिः प्रियस्य बन्धोः प्रियमातनोति।

बहुत समय के बाद प्राप्त हुआ बन्धुजन का समाचार क्या आनन्द नहीं देता?

: 90 :

छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।

(कार्य में) किसी प्रकार की कमी आने पर अनेक अनिष्ट उपस्थित हो जाते हैं।

ज

: 91 :

जगति विहितपुण्या ह्येव मित्रं लभन्ते।

संसार में पुण्यवान् लोगों को ही (अच्छे) मित्र की प्राप्ति होती है।

: 92 :

जगद् भानुभिर्भासयित्वा प्रकामं रविः श्रान्तकायोऽस्तमद्रिं प्रयाति।

सूर्य संसार को पूरी तरह प्रकाशित कर थक जाने पर अस्ताचल को चल देता है।

: 93 :

जननभुव उपेक्षां मानिनो नो सहन्ते।

स्वाभिमानी (व्यक्ति) मातृभूमि के निरादर को सहन नहीं करते हैं।

---

89. वही, पृ. 5/1
90. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 5/18 एवं श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्, 4/120
91. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/20
92. बृहत्तरं भारतम्, 94
93. इन्दिरागान्धीचरितम्, 23/12

: 94 :

जनानामेतस्याः प्रबलतरवेगेन भवति
सुखं वा दुःखं वा भवति किमिवान्यज्जगति वा।

उस (विधि) के प्रबल वेग द्वारा संसार में लोगों को सुख-दुःख या और कुछ भी होता है।

: 95:

जननी निजजन्मभूर्मता न विषह्यः खलु तत्पराभवः।

मातृभूमि को माता माना जाता है अतः उसके अपमान को सहन नहीं किया जा सकता।

: 96 :

जन्मादि दैवेऽधि न पौरुषं तु तन्मय्यधीत्येव गृहाण तावत्।

दैव का अधिकार (मनुष्य के) जन्मादि पर होता है, पौरुष पर नहीं।

: 97 :

जनविप्रियमाचरत्कथं बत! सह्यं भुवि शासनं भवेत्।

जनता का अप्रिय करने वाला शासन पृथिवी पर भला कैसे सह्य हो सकता है?

: 98 :

जाते वपुष्यभिमताखिलभोगहीने कालक्रमेण विगतासुनि तत्त्वलीने।
दग्धोऽग्निना भवति देह्यत एष किञ्चिज् जानाति नेष्टजनरोरुदितं कथञ्चित्॥

कालक्रमेण जब प्राणी का शरीर प्राणहीन, सभी प्रकार के भोगों से वंचित एवं परमतत्त्व में लीन हो जाता है, तब उसे अग्निदग्ध कर दिया जाता है अतः उसे अपने प्रियजनों के विलाप, रुदन आदि का कोई बोध नहीं होता।

---

94. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 20/5
95. इन्दिरागान्धीचरितम्, 5/11
96. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 14/57
97. इन्दिरागान्धीचरितम्, 5/7
98. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,12/49

: 99 :

जानामि कामं फलसिद्धिवामम्।

कामेच्छा फलसिद्धि में बाधक है।

: 100 :

जलनिधौ ननु मातु कथं जलं लसति खे यदि पूर्णकलः शशी।

यदि आकाश में पूर्णकला सम्पन्न चन्द्रमा शोभायमान हो रहा हो तो समुद्र में जल कैसे समाय?

त

: 101 :

तत्सन्तो 'द्रष्टुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।।'

विद्वान् (आलोचक) ही निर्णय कर सकते हैं कि (काव्य में) क्या अच्छाई या बुराई है क्योंकि स्वर्ण की शुद्धता अथवा अशुद्धता का परीक्षण अग्नि द्वारा ही होता है।

: 102 :

तथा महत्त्वं न धनस्य विद्यते वृथार्जनात् तेन मनश्च खिद्यते।
यथेह शीलं सदलंकरोत्यलं महोज्ज्वलं मानवजन्म निर्मलम्।।

धन का उतना महत्व नहीं है, व्यर्थ ही (सदुपयोग के बिना) धन संचय करने से मन खिन्न होता है, किन्तु इसके विपरीत शील पुरुष को अलंकृत करता है जिससे मानव जन्म अत्यन्त पवित्र और निर्मल हो जाता है।

---

99. बोधिसत्त्वचरितम्, 6/16
100. पत्रकाव्यम्, पृ. 61/2
101. थाइदेशविलासम्, पृ.118
102. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 2/67

: 103 :

तदन्यात्वे मनसो महान् स्यात् क्षोभो न वाचामपि गोचरो यः।

इससे विपरीत परिस्थिति (दत्तचित्त होकर कार्य न करने पर) मन में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है जिसका वर्णन सम्भव नहीं है।

: 104:

तनुते विधिरेव तत्क्षणात् न जनश्चिन्तयितुं हि यत्क्षमः।

विधाता एक क्षण में वह कर देता है जिसे मनुष्य कभी सोच भी नहीं सकता।

: 105 :

तन्तुः स्नेहमयः कश्चिच्चान्तर्मर्माणि सीव्यति।

कोई (एक अनिवर्चनीय) स्नेहमय तन्तु भीतर ही भीतर मर्मस्थलों को सी देता है।

: 106 :

तपःपूता महात्मानो महसां राशयो मताः।
तत्साक्षात्कारमात्रेण दूरेणापैति कल्मषम्।।

तपःपूत महात्मागण तेजोराशि माने जाते हैं, उनके साक्षात्कार मात्र से ही पाप (अनिष्ट) दूर भाग जाता है।

: 107 :

तरुणी कनकं कमलं कमला नहि कस्य हरन्ति मनोहरिणम्।
न विवेकिजनोऽपि निवर्तयितुं प्रभवेदिममित्यमृषोद्यवचः।।

तरुणी (युवति) कनक (स्वर्ण), कमल एवं कमला (लक्ष्मी) किस (मनुष्य)के मन रूपी हिरन का हरण नहीं करते? सच तो यह है कि विवेकी जन भी इसे मोड़ नहीं सकते।

---

103. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
104. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 20/20
105. पत्रकाव्यम्, पृ. 55/6
106. अप्रकाशितपत्रम्, स्वामी सर्वानन्द सारस्वती महाभागान् प्रति 21.1.1998 दिनाङ्के प्रेषितपत्रम्
107. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम, 10/25

: 108 :

तस्याः स्त्रियाः सत्यमजीवनिः स्याद् भर्त्रैव यस्या वध इष्यतेऽत्र।

सच है कि जिस स्त्री का पति ही उसका वध (मृत्यु) चाहे उसके जीने का कोई अर्थ नहीं।

: 109 :

तादृगेव घटतेऽत्र जगत्यां नैव चिन्तयति कोऽपि तु यादृक्।

इस जगत में ऐसी घटनाएँ घटती है जिसके विषय में व्यक्ति सोच भी नहीं सकता।

: 110 :

तोयगर्भा यथा मेघा धातुगर्भा यथाद्रयः।
कल्याणगर्भा विदुषां तथैव ह्याशिषो मताः॥

जिस प्रकार बादलों में जल एवं पर्वतों में धातुएँ छिपी रहती है उसी प्रकार यह माना जाता है कि विद्वानों के आशीर्वाद में कल्याण छिपा रहता है।

: 111 :

तृप्तिर्भवेच्छ्रेयसि नैव कस्यापि।

अच्छी वस्तु से किसी का भी मन नहीं भरता।

: 112 :

त्यक्तस्वार्थसुखः सखेति।

मित्र वह होता है, जो अपने स्वार्थ और सुख का त्याग करे।

---

108. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 23/7
109. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 7/19
110. पत्रकाव्यम्, पृ. 17/2 एवं 207/5
111. वही, पृ. 132/37
112. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/103

द

: 113 :

दग्धोऽग्निना भवति देह्यत एष किञ्चिज्
जानाति नेष्टजनरोरुदितं कथञ्चित्।

मृतक प्राणी अग्नि में दग्ध हो जाने पर अपने इष्ट बन्धुओं के रुदन को नहीं जान पाता है।

: 114 :

दन्दह्यमाने भवनेऽग्निना स्यात् कूपस्य तावत्खननं वृथैव।

जब आग से भवन जल रहा हो तो उस समय कुआँ खोदना व्यर्थ ही है।

: 115 :

दिव्यं निधिं नु समवाप्य न कः प्रहृष्येत्।

दिव्यनिधि के लाभ से कौन प्रसन्न नहीं होता?

: 116 :

दिव्यस्य वा सुचरितस्य हि पुण्यभाजां
संकीर्तनं किमपि पुण्यमथातनोति।

पुण्यात्माओं के अलौकिक चरित्र की चर्चा एक अपूर्व पुण्य का सृजन करती है।

: 117 :

दीर्घासत्तिर्दीर्घश्रमो दीर्घायासश्च सर्वथा।
अस्माभिः परिहर्तव्या आत्मनः स्वास्थ्यमीप्सुभिः॥

यदि हमें अपना स्वास्थ्य चाहिए तो हमें देर तक बैठना, देर तक परिश्रम करना तथा देर तक खटना नहीं चाहिए।

---

113. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,12/62
114. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 5/12
115. पत्रकाव्यम्, पृ. 17/1 एवं 207/4
116. बृहत्तरं भारतम्, 83
117. पत्रकाव्यम्, पृ. 87/1।

: 118 :

दुःखं सुखं च सहगामि विधेर्बलेन।

भाग्यवश से सुख एवं दुःख साथ-साथ चलते हैं।

: 119 :

दुर्भाग्योपहतो नूनं शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति।

शास्त्रविद् भी दुर्भाग्यवश कर्तव्यविमूढ हो जाते हैं।

: 120 :

दुर्लभा भ्रातरः सर्वकालम्।

भ्राता सदा दुर्लभ होते हैं।

: 121 :

दुश्चेष्टां बालकस्यापि न क्षमन्ते महाजनाः।

बड़े लोग बालक की भी दुश्चेष्टा को सहन (माफ़) नहीं करते हैं।

: 122 :

दुष्टतां चरति दुर्जनेषु यः शीलवानिति कथं स मन्यताम्।

जो व्यक्ति दुर्जन के साथ तदनुसार ही दुष्टता का आचरण करे, उसे शीलवान् कैसे माना जाए?

: 123 :

दुष्टः स्वयं योऽस्ति कथं परेषां स दोषमुद्घोषयितुं प्रभुः स्यात्।

जो स्वयं दोषयुक्त है, वह दूसरों के दोष बताने में किस प्रकार समर्थ हो सकता है?

---

118. इन्दिरागान्धीचरितम्, 15/22
119. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 3/27
120. वही, 5/33
121. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 22/30
122. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् , 2/52
123. बोधिसत्त्वचरितम्, 7/25

: 124 :

दोषाः प्रकृत्या प्रकटीभवन्ति।

विसंगतियाँ (दोष) सहज स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाती हैं।

ध

: 125 :

धन्या भवन्ति भुवनेषु .... ये नैवासजन्ति वितते प्रकृतेर्निकाये।

(वैसे व्यक्ति) संसार में धन्य हैं, जो प्रकृति के विशाल लीलाप्रांगण में आसक्त नहीं होते हैं।

: 126:

धन्यास्ते ऋषयो लोके शास्त्रनिर्मलबुद्धयः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

शास्त्रों से जिनकी बुद्धि निर्मल है - ऐसे ऋषि संसार में धन्य हैं। इनके यशरूपी शरीर में जन्म और मृत्यु का भय नहीं है।

: 127 :

धर्मात् प्रमाद्यन् नृपतिः स्वनाशं नश्यत्यपभ्रंशयते च राष्ट्रम्।

जो राजा धर्म में प्रमाद करता है, वह स्वयं भी विनष्ट होता है और राष्ट्र को भी पथभ्रष्ट करता है।

: 128 :

धीरा आपद्यपि निपतिता नैव मुञ्चन्ति धैर्यम्।

धैर्यवान् विपत्ति में पड़ने पर भी धैर्य का त्याग नहीं करते हैं।

---

124. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 23/14
125. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/84
126. पत्रकाव्यम्, पृ. 66/1
127. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/48
128. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 9/1

: 129:

धैर्यं हि यत्सा प्रकृतिर्गुरूणाम्।

धैर्य गुरुओं का स्वभाव है।

: 130 :

ध्वंसन्ते ते विषमपतिता नोन्नतिं कर्तुमीशा-
स्त्यक्त्वा स्वीयं सुकृतमुचितं नाम्नि निष्ठां गता ये।
दोषस्पृष्टे गुणविरहिते पुंसि किं बुद्धिशून्ये
श्रेष्ठं प्रेष्ठं श्रुतिसुमधुरं नामधेयं विदध्यात्।।

जो लोग अपने उचित सत्कर्मों को त्याग कर सुन्दर नाम से ही संतुष्ट होते हैं, वे संकट में पड़कर नष्ट हो जाते हैं और अभ्युदय प्राप्ति में सक्षम नहीं होते। दोषपूर्ण, गुणहीन तथा बुद्धिशून्य पुरुष का श्रेष्ठ, अतिप्रिय एवं श्रुतिमधुर नाम क्या कर सकता है?

न

: 131 :

न कस्यापि वीर्यं परीक्ष्यं गिरैव।

किसी (व्यक्ति) की वीरता का परीक्षण केवल वाणी से ही नहीं होता है।

: 132 :

न केवलं नामत एव किञ्चित् प्रयोजनं सिध्यति मानवानाम्।
तेऽतो विशेषेण गुणादृताः स्युर्नात्यादृताः सन्तु च नामधेये।।

केवल नाम से मनुष्यों का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता अतः उन्हें विशेष रूप से गुणोपार्जन में यत्न करना चाहिए। नाम को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए।

---

129. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम, 1/72

130. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/37

131. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 18/26

132. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/39

: 133 :

न कोऽपि कर्तुं किमपीह शक्तो न वा परावर्तयितुं च किञ्चित्।
कालेन बद्धं दृढतन्तुनेदं व्याधेन पक्षीव विरोरवीति।

इस संसार में कोई कुछ भी कर नहीं सकता और न ही (जो हो रहा है, उसे) परिवर्तित कर सकता है। काल के द्वारा मजबूत रस्सी से बंधा हुआ यह संसार इस प्रकार चीखता-चिल्लाता है जैसे शिकारी से पकड़े जाने पर पक्षी।

: 134 :

न च कृतमुपकारं बन्धवो विस्मरन्ति।

बन्धुजन पूर्वकृत उपकार को नहीं भूलते हैं।

: 135 :

न तितिक्षासमं किञ्चिदस्ति साधनमुत्तमम्।

सहिष्णुता के समान (विपत्तियों के निरास का) कोई अन्य उत्तम साधन नहीं होता है।

: 136 :

न प्रत्नत्वं न नूलत्वं तदारोपि भववेत्क्वचित्।
नित्यत्वे स्वीकृते तस्य कथं तत्परिकल्पना? ॥

कहीं भी न पुरानापन होता है, न नयापन। उसका तो आरोप किया जाता है। यदि उसे (काल को) नित्य मान लिया जाए तो उसकी (नयेपन और पुरानेपन की) कल्पना ही कैसे हो सकती है?

: 137 :

न भवति हि कृतागाः क्वापि कस्याऽप्यभीष्टः।

अपराधी व्यक्ति निश्चय ही किसी को प्रिय नहीं होता है।

---

133. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.1.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
134. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/29
135. श्रीबोधिसत्त्वचरितम, 4/90
136. अप्रकाशितपत्रम्, डा. मोहनानन्दमिश्रान् प्रति 27.01.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
137. श्रीबोधिसत्त्वचरितम, 13/91

: 138 :

न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।

विश्वास अविश्वस्त पर तो क्या, विश्वस्त पर भी नहीं करना चाहिए।

: 139 :

न सह्या भवेन्मानहानिः कथञ्चित्।

मानहानी (तिरस्कार) किसी भी प्रकार से सहनीय नहीं होता।

: 140 :

न साम्येन तिष्ठत्यहो कश्चनापि।।

कोई भी (वस्तु) एक जैसी स्थिति में नहीं रहती।

: 141 :

न साहसानाश्रयिणो जनाः स्युः कल्याणभाजो जगतीतलेऽत्र।

इस संसार में जो साहस का आश्रय नहीं लेते अर्थात् हिम्मत से कार्य नहीं करते, वे कल्याण के पात्र नहीं होते।

: 142 :

न सुखेन हि तिष्ठति दुष्टजनः।

दुष्ट लोग सुख से नहीं रह सकते हैं।

: 143:

न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।

कस्तूरी के गन्ध की पहचान शपथ (कसम) खाने से नहीं होती।

---

138. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/62
139. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम, 11/16
140. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 4/112
141. पत्रकाव्यम, पृ. 257/7
142. पत्रकाव्यम्, पृ. 11/5
143. बृहत्तरं भारतम्, 91

: 144 :

नाग्निना शाम्यति ह्यग्निः क्रोधः क्रोधेन नैव च।
परस्परविरोधो हि परस्परविनाशकृत्।।

अग्नि से अग्नि शांत नहीं होती और न ही क्रोध से क्रोध। परस्पर विरोध से परस्पर विनाश ही होता है।

: 145 :

नार्थः सिध्यति कश्चनाऽप्यभिमतो, भद्र! स्वयं नामतः
स्युर्नामानुगुणा गुणा इह नृणामेतद्धयनैकान्तिकम्।

नाम से कोई भी अभीष्ट प्रयोजन स्वयमेव सिद्ध नहीं हो जाता। संसार में लोगों के गुण नाम के ही अनुरूप हों - यह नितान्त आवश्यक नहीं है।

: 146 :

नानुनयाच्छाम्यति कोपभाग् जनः।

क्रोधी व्यक्ति को अनुनय (विनय) से शांत नहीं किया जा सकता है।

: 147 :

नाम्नो नास्ति महत्त्वमत्र भुवने कर्मैव मुख्यं मतम्।

यहाँ (संसार में) नाम का महत्व नहीं है, कर्म को ही मुख्य माना गया है।

: 148 :

नितान्ततान्तस्य मनःसमाधिः कुतस्तु कामोपहतस्य सिध्येत्।

कामज्वर से पीड़ित तथा अत्यन्त व्याकुल मनुष्य के लिए मन की एकाग्रता कहाँ सम्भव है?

---

144. पत्रकाव्यम्, पृ. 57/5
145. श्रीवोधिसत्त्वचरितम्, 14/7
146. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 20/44
147. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 14/6
148. वही, 6/8

: 149 :

निद्रा मता शान्तिकरी जगत्यां कष्टश्रितानामपि देहभाजाम्।

कष्ट में पड़े व्यक्ति के लिए भी निद्रा को जगत् में शांतिदायक कहा गया है।

: 150 :

निन्द्यं नाम सदप्यनिन्द्यचरिते पुंसि प्रशस्यं भवेद्
दुर्वृत्तेऽर्हति गर्हणं शुभमपीत्येतद् दृढं मे मतम्।
सत्कर्मप्रवणो भव त्वमनिशं नाम्न्येव माऽत्यादृथाश्
चिन्तां मा स्म कृथा वृथा शुभपथान्मा भूश्च्युतः कर्हिचित्॥

सच्चरित्रशाली पुरुष का निन्दनीय नाम भी प्रशंसित तथा दुराचारी का मांगलिक नाम भी निन्दित हो सकता है - यह मेरा दृढ़ मत है। अतः सदा शुभ कार्यों में संलग्न रहो, नाम को अधिक महत्व न दो, व्यर्थ की चिन्ता मत करो एवं कभी शुभ कर्म से विचलित न हो।

: 151:

निसर्गतश्चेतसि संस्थितानां पदे पदे चानुभवं गतानाम्।
शक्यं न विज्ञैरपि वासनानां समूलमुन्मूलनमत्र कर्तुम्॥

वासनाएँ स्वाभाविक रूप से मन में निवास करती है और पग-पग पर उनका अनुभव होता रहता है। विज्ञजन भी इन वासनाओं को समूल नष्ट करने में समर्थ नहीं है।

: 152 :

नैकत्र कोशेऽसियुगं सह स्यात्।

दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं।

---

149. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 7/2

150. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/8

151. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 6/40

152. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 6/9

: 153 :

नैव जात्याऽस्ति कश्चिद् बली वाऽबली वेति बाढं गृहाण।

यह तथ्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जन्म से कोई बलशाली अथवा बलहीन नहीं होता है।

: 154 :

नो कश्चिच्चिरमभिरोचयेत् प्रवासम्।

चिरकाल का प्रवास किसी को भी अच्छा नहीं लगता है।

प

: 155 :

पतिर्हि नार्यै परमेश्वरोऽस्ति।

स्त्री के लिए पति ही (उसका) परमेश्वर है।

: 156 :

पतिं तु या नार्यतिजीवतीह नान्या ततोऽधन्यतमाऽत्र लोके।

इस जगत् में उस स्त्री से अधिक अधम (अभाग्यशाली) कोई नहीं है, जो पति की मृत्यु के बाद भी जीवित रहती है।

: 157 :

पत्रेण कुशलोदन्तो लब्धः प्रियजनस्य हि।
किञ्चिदेव भवेदूनः सङ्गमादिति सूरयः॥

विद्वानों का कहना है कि पत्र द्वारा प्रियजनों का समाचार (साक्षात्) मिलन से किञ्चित् ही कम होता है।

---

153. वही, 18/25
154. इन्दिरागान्धीचरितम्, 16/9
155. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्,12/36 एवं 25/22
156. वही, 24/28
157. पत्रकाव्यम्, पृ. 72/2, पृ. 8/1, पृ. 38/3

: 158 :

परद्रव्यापहारो हि मरणं प्राणिनां ध्रुवम्।

दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण करना निश्चय ही प्राणियों का मरण है (गर्हित होने से मरणतुल्य है)।

: 159 :

परस्परेण सम्बन्धः स्निग्धयोः प्रीतिदो भवेत्।

स्नेही जनों का परस्पर सम्बन्ध आनन्ददायक होता है।

: 160 :

पराधीनतायां सुखं कस्य वा स्यात्।

पराधीनता में भला कौन सुखी रह सकता है?

: 161:

पापं प्रकुर्वन् मनुते मनुष्यो मद्दुष्कृतं वेद न कश्चिदन्यः।
किन्तु स्थिता देवगणास्तदीयं जानन्ति सर्वं ह्यशुभं शुभं वा॥

पापकर्म करते हुए मनुष्य यह समझता है कि मेरे दुष्कृत्य को अन्य कोई नहीं जानता है, किन्तु देवगण उसके सभी शुभ तथा अशुभ कर्मों को (निश्चय ही) जानते हैं।

: 162 :

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।

कोई वस्तु पुरानी है, इतने मात्र से ही अच्छी एवं नयी है, इतने मात्र स ही बुरी नहीं हो जाती।

: 163 :

पुस्तकीभवति पण्डितः।

पण्डित पुस्तक ही बन जाता है।

---

158. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 4/106
159. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ रामकिशोरमिश्रान् प्रति 20.09.2000 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
160. इन्दिरागान्धीचरितम्, 3/9
161. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 9/5
162. पत्रकाव्यम्, पृ. 224/4
163. वही, 235/3

: 164 :

पुत्रिकाविरहितः पिता कथं शान्तिमेतु धृतिसंयुतोऽपि सन्।

पुत्री से वियुक्त पिता धैर्यवान् होने पर भी कैसे शान्ति पाय?

: 165 :

पौत्रसंवर्धना सत्यं कस्य नैव मुदे भवेत्।

पौत्र का उत्कर्ष किसे आह्लादित नहीं करता?

: 166 :

प्रकाशरूपो नहि तिग्मरश्मिर्दीपेन धूपेन च पूज्यते किम्?

जो स्वयं प्रकाशरूप है उस (सूर्य) की पूजा क्या धूप एवं दीप से नहीं की जाती?

: 167 :

प्रजापतेः सृष्टिरियं विचित्रा।

प्रजापति की यह सृष्टि सचमुच विचित्र है।

: 168 :

प्रणयवचनबद्धास्तादृशा लब्धरायः
प्रियमिह न निराशं कुर्वते स्वं सखायः।

प्रेमवचन में बंधे हुए धनी मित्र अपने प्रियजन (मित्र) को कभी निराश नहीं करते हैं।

: 169 :

प्रबलतरविधिः किन्न कुर्यात्प्रतीपः।

अत्यन्त प्रबल दैव जब विपरीत होता है, तो क्या कुछ नहीं कर देता?

---

164. इन्दिरागान्धीचरितम्, 7/20
165. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ पी. एन. कवठेकरान् प्रति 23.4.2002 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
166. पत्रकाव्यम्, पृ. 193/5
167. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 1/33
168. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/12
169. इन्दिरागान्धीचरितम्, 24/6

: 170 :

प्रबलविधिविधानं को नरो रोद्धुमीशः।

विधि के प्रबल विधान का प्रतिरोध कौन कर सकता है?

: 171 :

प्रबलमस्ति विधेर्हि विचेष्टितम्।

विधि की विडम्बना (चेष्टा) अत्यन्त प्रबल है।

: 172 :

प्रबलं विधिचेष्टितम्।

भाग्य बहुत बलवान् है।

: 173 :

प्रभोर्वाक्यं महेशस्य न कदाप्यन्यथा भवेत्।

भगवान् महेश का वचन कभी भी अन्यथा नहीं हो सकता अर्थात् बदल नहीं सकता।

: 174:

प्रभुर्विचित्रश्च जयेत्सदैव योऽकालरूपश्च निराकृतिश्च।

विचित्र प्रभु - जो अकाल एवं निराकार है की सदैव जय हो।

: 175 :

प्रमादा दुःखकारिणः।

प्रमादों से दुःख उत्पन्न होता है।

: 176:

प्रलोभिता भूरि सुखैषणाभिः कष्टैरनिष्टैः परिवेष्टिता वा।
कल्याणहेतुं परिनिष्ठितास्था धीराः स्वधर्मं न परित्यजन्ति।

अत्यधिक इष्ट पदार्थों से सुतरां प्रलोभित अथवा अनिष्टकारक कष्टों

---

170. इन्दिरागान्धीचरितम्, 13/26
171. इन्दिरागान्धीचरितम्, 12/20 172. वही, 12/32
173. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 3/19
174. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्, 3/35
175. पत्रकाव्यम्, पृ. 33/3
176. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्, 4/66 एवं श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/10

से घिरे होने पर भी पूर्ण आस्थावान धीर व्यक्ति कल्याण के हेतुभूत अपने धर्म का परित्याग नहीं करते ।

: 177 :

प्रवञ्चनां शुद्धहृदो जनस्य विगर्हणीयां प्रवदन्ति सन्तः।

शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति की प्रवञ्चना (ठगना, धोखा देना) को साधु (उत्तम) लोग विगर्हणीय (निन्दनीय) मानते हैं।

: 178:

प्रवाहनित्यतां कालेऽङ्गीकुर्वन्ति मनीषिणः।
कथं नवत्वं तस्य स्यादजस्रपरिवाहिणः॥

मनीषिगण काल में प्रवाहनित्यता को स्वीकार करते हैं। निरन्तर चले आ रहे उसका नवत्व (नयापन) कैसे हो सकता है?

: 179 :

प्रवर्तितुं वक्रधियः कदाचिदृजुं न पन्थानमुपाश्रयेयुः।

टेढ़ी बुद्धि वाले लोग कभी सीधी राह का आश्रय नहीं लेते हैं।

: 180:

प्रशस्यते धर्मरुचिर्महीपः प्रज्ञान्वितः पुण्यपथप्रदीपः।
विश्वासघाताज्जनितानुतापात् पापाज्जुगुप्सुश्च जनः प्रशस्यः॥

धर्म में रुचि रखने वाला बुद्धिमान् तथा पवित्रता के पथ का दीपक राजा प्रशंसनीय होता है। इसी प्रकार पश्चात्ताप उत्पन्न करने वाले विश्वासघात रूप पाप से घृणा करने वाला मनुष्य भी प्रशंसित होता है।

---

177. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 24/35
178. अप्रकाशितपत्रम्, डा. मोहनानन्दमिश्रान् प्रति 27.01.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।
179. इन्दिरागान्धीचरितम्, 18/31
180. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/35

: 181 :

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिर्जीवस्य जायते।

जब मन शांत रहता है तो प्राणी के सब दुःख दूर हो जाते हैं।

: 182 :

प्राकृता अपि समाचरन्ति तां या शठेषु शठतोपपादिता।

यह जो कहा गया है कि शठ के साथ शठता का व्यवहार करना चाहिए उसका अनुसरण सामान्य जन भी करते हैं।

: 183:

प्राचेतसेन मुनिना सत्योद्या गीः प्रवर्तिता।
अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्राऽपि दह्यते।

ऋषि बाल्मीकि ने सच ही कहा है कि पूरी तरह स्नेह (यहाँ स्नेह शब्द तेल और प्रेम दोनों अर्थों में प्रयुक्त है) में डूबी होने पर गीली बत्ती भी जल जाती है।

: 184 :

प्राणा यदा संशयमापतेयुः सुतस्य का नाम तदास्ति माता।
दीर्येत यस्या हृदयं न भद्र! पुत्रस्य शोको ह्यविषह्य एव॥

जब पुत्र का प्राण संकट में हो तो किस माता का हृदय शोक से विदीर्ण नहीं होता क्योंकि पुत्रशोक असहनीय होता है।

: 185 :

प्रायः समासन्नपराभवाणां धियो विपर्यस्ततरा भवन्ति।

प्रायः उनका, जिसका विनाश निकट (विनाश होने को है) है की बुद्धि कुमार्गानुगामी होती है।

---

181. पत्रकाव्यम्, पृ. 94/16
182. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/51
183. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ रामकृपालुत्रिपाठिनं प्रति 1.11.2000 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।
184. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 14/17
185. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 6/21

: 186:

प्राज्ञैः परीक्षिते ग्रन्थे तैश्चापि समभिष्टुते।
प्रभवत्येव तत्कर्तुः स्वत आनन्दनिर्झरः॥

विद्वानों के द्वारा ग्रन्थ की परीक्षा (गुणावगुण समीक्षा) और उनके द्वारा प्रशंसित होने पर उसके लेखक के आनन्द के झरने का प्रस्फुटन स्वतः होने लगता है।

: 187 :

पिताऽपि यद्युत्पथमाश्रयेत वर्ज्यो भवेदेव कदन्नवत्सः।

पिता भी अगर कुमार्ग का अनुगमन करे तो वह निश्चय ही घृणित अन्न के समान त्याज्य है।

: 188 :

प्रियं भ्रातृरूपं तु न विलोके।

संसार में भाई के समान प्यारा बन्धु नहीं दिखता।

: 189 :

प्रेमास्त तद् यन्न हि किञ्चिदेव कस्माच्चन प्रार्थयतेऽविकारः।

प्रेम तो वह है जो विकृतिहीन रहकर किसी से कुछ नहीं मांगता।

: 190 :

प्रेष्ठे सुते विनयशालिनि यूनि नष्टे
रोरुद्यते सकल एव यतो विशिष्टे।

प्रिय, विनयशील, तरुण एवं विशिष्ट गुणवान् पुत्र के मरने पर सभी (व्यक्ति) ज़ोर ज़ोर रोते हैं।

---

186. अप्रकाशितपत्रम्, श्री रामनारायणपाण्डेयं प्रति 17.9.1996 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
187. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/33
188. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 5/24
189. पत्रकाव्यम्, पु. 255/5
190. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/47

: 191 :

प्रोक्ताऽऽर्तोपकृतिः कृता सुकृतिभिः शस्या यशस्यापि च।

महात्माओं ने दुःखियों पर किए गए उपकार को अभिनन्दनीय एवं कीर्तिदायक कहा है।

फ

: 192 :

फलति बहुललोभात् सर्वथेह प्रणाशः।

अधिक लोभ करने से सर्वथा विनाश ही होता है।

ब

: 193 :

बन्धूनां कुशलोदन्तः सदा प्रीतिकरो भवेत्।

बन्धुओं के शुभ कुशल समाचार से सदा आनन्द होता है।

: 194 :

बन्धूनां सत्प्रेमगर्भा गिरो हि कल्याणानमर्पयित्र्यो भवन्ति।

बन्धुओं के प्रेमयुक्त वचन कल्याणकारी होते हैं।

:195:

बान्धवानां मुदे यूनो द्वितीयाश्रमसङ्गमः।

नवयुवक का गृहस्थाश्रम में प्रवेश बन्धुजनों के लिए आनन्ददायक होता है।

---

191. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/104
192. वही, 13/96
193. पत्रकाव्यम्, पृ. 38/3, पृ. 45/1, पृ.77/1
194. वही, पृ. 15/1
195. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ कला आचार्यां प्रति 5.4.1998 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्

: 196 :

बलवति सति दैवे पूरुषः को वराकः।

भावी के प्रबल होने पर पुरुष का क्या वश चलता है?

: 197 :

बालका अपि सुसूक्ष्मवेदिनः।

बच्चों की भी (ईश्वरप्रदत्त) सूक्ष्म दृष्टि होती है।

: 198 :

बालस्य लीलाऽपि विभुग्धभावादत्यन्तमुद्वेगकरी भवेन्नु।

कभी-कभी अबोध शैशवावस्था (का कार्य) भी अपार व्यथा को उत्पन्न करता है।

: 199 :

बालानां हि मनोभावा बलादाविर्भवन्त्यहो!।

बच्चों के मन की भावनाएँ अनायास ही व्यक्त हो जाती हैं।

: 200:

बालो यथेन्दुमनवाप्य मुधा प्ररुद्याद्
व्यर्थं मृते विलपितं च तथैव विद्यात्।

जिस प्रकार शिशु चाँद को न पाकर व्यर्थ ही रोता है उसी प्रकार किसी की मृत्यु पर विलाप करना भी व्यर्थ ही समझना चाहिए।

: 201:

बुधां च नृणामबुधां विशेषतः कुतूहलिन्यः खलु चित्तवृत्तयः।

व्यक्तियों में प्रबुद्ध व्यक्तियों की चित्त वृत्ति, विशेषकर अप्रबुद्ध व्यक्तियों की कुतूहलपरक होती है।

---

196. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/27
197. इन्दिरागान्धीचरितम्, 7/17
198. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 5/6
199. इन्दिरागान्धीचरितम् 4/20
200. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,12/67
201. बृहत्तर भारतम्, 66

: 202 :

बुद्धिमानपि विवेकयुतोऽपि शास्त्रशीलनपरोऽपि बुधोऽपि।
क्रोधमार्गमभितः प्रतिपन्नो नो विचिन्तयति कार्यमकार्यम्॥

बुद्धिमान्, विवेकी, शास्त्रानुरूप कार्यरत एवं विद्वान् (व्यक्ति) भी क्रोधित होने पर कार्याकार्य का चिंतन नहीं कर पाता।

भ

: 203 :

भक्त्योपास्याश्च गुरवः।

भक्तिभाव से गुरुओं की सेवा करनी चाहिए।

: 204 :

भक्तावमाननां नैव सहन्ते भक्तवत्सलाः।

भक्तवत्सल (भक्तानुरागी) कभी भक्तों की अवमानना (तिरस्कार) को सहन नहीं करते हैं।

: 205 :

भगिन्याः कृते भ्रातृतुल्यो न कश्चित्।

बहन के लिए भाई के बराबर और कोई नहीं हो सकता।

: 206 :

भर्तृरहिता न समुल्लसन्ति पत्न्यः।

पतिरहित स्त्रियों की शोभा (सामाजिक सम्मान) नहीं होती ।

---

202. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/34
203. पत्रकाव्यम्, पृ. 215/11
204. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 22/55
205. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 5/21
206. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/66

: 207 :

भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।

होनहारों के प्रति पक्षपात होते ही है।

: 208 :

भवेद्यथा नाम तथा गुणाः स्युरित्यस्ति यद्यप्युदिता प्रसिद्धिः।
तथापि नात्यन्तमिवाऽऽदृतत्वात् सर्वत्र सा नेति विभावनीयम्।।

यद्यपि लोक में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि जैसा नाम वैसा गुण तथापि अनिवार्य रूप से यह सर्वत्र सिद्ध नहीं होता - ऐसा समझ लेना चाहिए।

: 209 :

भावो जन्मान्तरीणो हि स्थिरः सम्बन्ध उच्यते।

जन्मान्तर तक जाने वाला भाव (अनुराग) स्थिर सम्बन्ध कहलाता है।

म

: 210 :

मतः प्रेमस्थेमा जगति परमं भेषजमिह।

इस संसार में स्थिर प्रेम को श्रेष्ठ औषध माना गया है।

: 211 :

मतिमतां नातीव नाम्न्यादरः।

बुद्धिमान् लोग नाम को अधिक महत्व नहीं देते हैं।

---

207. इन्दिरागान्धीचरितम्, 1/17
208. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/40
209. पत्रकाव्यम्, पृ. 232/6
210. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 11/3

211. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 14/25

: 212 :

मनस्विनां तावदुपोढसत्त्वो विपत्सु मग्नोऽप्यसुखस्थितोऽपि।
न स्त्रीजनः प्राकृतवत्कदाचिच् चेष्टेत शैलप्रतिमस्वभावः।।

विपत्तियों में घिरे एवं संकटों से युक्त होने पर भी मनस्वी जनों की उन्नत धैर्यसम्पन्न तथा चट्टान सदृश दृढ़ (मन वाली) स्त्रियाँ कभी भी साधारणजन की तरह व्यवहार नहीं करती हैं।

: 213 :

मनस्विनां स्वं नहि किञ्चिदस्ति।

महापुरुषों का अपना कुछ भी नहीं होता है।

: 214 :

.......मनुष्येषु मतो विशिष्टः करोत्यधर्माचरणं यदीष्टः।
अन्ये तमेवानुसरन्ति नूनं राष्ट्रं प्रदुष्येच्च भवेच्च पूनम्।।

मनुष्यों में माननीय एवं विशिष्ट माने जाने वाले व्यक्ति यदि अधर्म का आचरण करते हैं, तो अन्य लोग भी इसी का अनुगमन करते हैं। फलतः (इससे) राष्ट्र का स्वरूप दूषित हो जाता है और वह नष्ट हो जाता है।

: 215 :

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

बड़े लोग जिस मार्ग पर चले, मार्ग वही है।

: 216 :

माताऽपि वात्सल्यरसेन सिक्ता साऽस्तीति मातृत्वगुणा जयन्ति।

माता भी वात्सल्य रस से सराबोर होने पर (ही) शोभायमान होती है। इसलिये मातृत्वगुण की सर्वोपरि हैं।

---

212. इन्दिरागान्धीचरितम्, 6/11
213. वही, 5/25
214. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/40
215. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 11/19
216. इन्दिरागान्धीचरितम्, 22/29

: 217 :

मानेच्छोर्भवति परावलम्बिता नो।

सम्मान चाहने वाला व्यक्ति कभी दूसरे का सहारा नहीं लेता है।

: 218 :

माया गुरूणां सुविलक्षणैव।

गुरुओं की माया विलक्षण (विचित्र)ही होती है।

: 219 :

मैत्र्येवं भावनीयेष्टा सदा चित्तप्रसादनी।

मन को सदा प्रमुदित करने वाली मैत्री भावना का ही अनुचिन्तन हितकर है।

य

: 220 :

यतां विकारं त्यजतां विचारं धिक्कार एवास्तु कुतोऽधिकारः।

विवेक खोकर विकारों से वशीभूत लोगों को धिक्कार ही मिलना चाहिए, अधिकार की तो बात ही क्या।

: 221 :

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।

जहाँ (सुन्दर) आकृति हो वहीं गुणों का वास होता है।

: 222 :

यथा राजा तथा प्रजाः।

जैसा राजा वैसी प्रजा।

---

217. वही, 16/12
218. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम, 3/25
219. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 4/17
220. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 7/27
221. इन्दिरागान्धीचरितम्, 1/2
222. वही, 4/6

: 223 :

यदि दुःखभरस्य वर्णनं निजगीतेषु भवेत् क्वचित्तदा।
अतिरुच्यानि भवन्ति तानि नो मनआर्तिसमावृता हि मुत्।

यदि कहीं भी अपने गीतों में दुःखातिशय का वर्णन होता है तो वे अतिरोचक लगने लगते हैं। प्रसन्नता मन की पीड़ा से आच्छन्न होती है।

: 224 :

यदि याति लता स्वयमेव तरुं यदि याति नदी च तथा जलधिम्।
नहि तत्र विचित्रमिति प्रकटं प्रकृतिः पुरुषं स्वयमेति यतः॥

यदि लता स्वयमेव वृक्ष का आश्रय ले और नदी सागर में समाहित हो तो आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि प्रकृति पुरुष के पास स्वयं ही चली जाती है।

: 225 :

यद्यस्ति दण्ड्यः क्वचनाऽत्र लोके
स एव दण्ड्यः स्वजनापकारी।

अगर इस संसार में कोई दण्डनीय है तो वह है जो अपने स्वजनों का अपकार करता है।

: 226 :

यः शुद्धबुद्ध्या कुरुते स्वकार्यं विचारवानस्ति चरित्रवांश्च।
धीरस्य लब्धानुभवस्य तस्य नतस्य हानिर्न कदाचिदस्ति।

जो (व्यक्ति) विचारशील एवं चरित्रवान् है तथा शुद्ध बुद्धि से काम करता है उस धीर, अनुभवी एवं विनीत पुरुष को कभी हानि नहीं उठानी पड़ती ।

---

223. अप्रकाशितपत्रम्, 2.2.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्।

224. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 10/28

225. इन्दिरागान्धीचरितम्, 9/12

226. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 1/120

: 227 :

यशोधनानां हि यशो गरीयः।

यश ही जिनका धन है उनके लिए यश महत्वपूर्ण है अर्थात् यश का मूल्य है।

: 228 :

यात्येकतोऽस्तशिखरं यदि धर्म एकस् तत्स्थानमापतति निश्चितमन्य एव।
धर्मद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां पूर्वस्तिरस्क्रियत इत्यति कष्टदायि।।

यदि एक धर्म अस्त हो रहा हो और दूसरे धर्म का उदय, तो एक ही समय एक धर्म की अवनति और दूसरे की उन्नति होने पर पूर्व धर्म का तिरस्कार अति कष्टदायक होता है।

: 229 :

यादृशी भवति यस्य भावना तादृशीं स खलु सिद्धिमृच्छति।

जैसी जिसकी भावना होती है, वैसी ही उसे सिद्धि प्राप्त होती है।

: 230 :

योगादिशास्त्राभ्यसने रतानां तपःप्रभावेण भयावहानाम्।
कोपः प्रभुध्यानपरायणानां सदा गुरूणां परिवर्जनीयः।।

योगादि शास्त्राभ्यास में रत, तपप्रभाव के कारण भयावह एवं प्रभुध्यान में लीन गुरुओं के कोप का सदा परिहार करना चाहिए।

: 231 :

यो निजाश्रितजने नहि साधुस्त्याग एव खलु तस्य तु साधुः।

जो (व्यक्ति) अपने आश्रितों के लिए सही नहीं है (उनके साथ ठीक व्यवहार नहीं करता) उसका तो त्याग ही अच्छा है।

---

227. पत्रकाव्यम्, पृ. 58/3
228. पत्रकाव्यम्, पृ. 100/19
229. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/47
230. श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्, 2/82
231. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/16

र

: 232 :

रज्जुच्छेदे घटमिव नु को धारयेत् सद्वचोऽज्ञः?

रस्सी टूटने पर घड़े की तरह कौन मूर्ख व्यक्ति सद्वचनों को सहारा दे।

: 233 :

रागद्वेषादिमग्नानां गुणिनामपि भूरिशः
काव्यादिविमुखानां हि कालो याति निरर्थकः।

राग-द्वेष आदि में मग्न (एवं) काव्य आदि से विमुख बहुत से गुणिजनों का भी समय निरर्थक चला जाता है।

: 234 :

रामाभिरामचरिते रमते जनौघः।

जनता राम के रमणीय चरित्र में रमती है (आनन्दानुभव करती है)।

ल

: 235 :

.... लोकेषु महानधीष्टः करोति धर्माचरणं यदीष्टः।
अन्ये तमेवानुसरन्ति नूनं राष्ट्रं समृद्धञ्च भवत्यनूनम्॥

लोक में प्रिय महान् नायक अथवा राजा यदि धर्मपथ पर चलता है, तो अन्य निःसन्देह उनका अनुकरण करते हैं फलतः राष्ट्र अधिक सम्पन्न एवं समृद्ध हो जाता है।

---

232. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 9/13

233. पत्रकाव्यम्, पृ. 95/4

234. पत्रकाव्यम्, पृ. 149/137

235. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,9/41

: 236 :

लोकोत्तरा नैव जनाः कदाचिच् चेष्टां स्वकां प्रांकृतवत्प्रकुर्युः।
अनन्यसामान्यविभूतिकानि तेषां चरित्राणि भवन्ति लोके॥
अलौकिक पुरुष कभी साधारण व्यक्तियों के समान व्यवहार नहीं करते हैं एवं संसार में उनके चरित्र असाधारण विभूतियों वाले होते हैं।

व

: 237 :

वनाली साऽपूर्वा मदयतु कुतो नाम न मनः
प्रकृत्या स्वच्छाया व्यरचि रुचिरा या भगवता।
वनों की अपूर्व श्रेणी मन को भला कैसे न मुग्ध कर दे, जिसकी रचना स्वयं भगवान् ने अपनी सुन्दर छाया के रूप में की है।

: 238 :

वयोवृद्धितो ज्ञानवृद्धिर्भवेदित्युदारो विचारो विपश्चिज्जनानाम्।
विद्वज्जनों का यह शोभन विचार है कि अवस्था के साथ ज्ञान भी बढ़ता है।

: 239 :

वस्तुतो बन्धुभावो नो देशकालावपेक्षते।
वस्तुतः बन्धुत्व को देश एवं काल की अपेक्षा नहीं होती है।

: 240 :

वाते महत्यपि महागिरयो भवेयुर्निष्कम्परूपरुचिरा इति नात्र चित्रम्।
तेज़ आँधी चलने पर भी बड़े-बड़े पहाड़ यदि निश्चल खड़े रहते हैं, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

---

236. इन्दिरागान्धीचरितम्, 13/9
237. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 10/11
238. इन्दिरागान्धीचरितम्, 3/19
239. पत्रकाव्यम्, पृ. 232/4
240. इन्दिरागान्धीचरितम्, 15/12

: 241 :

वायुनाऽपि बलवत् प्रविधूताः सङ्किरन्ति तरवः कुसुमानि।

वायु द्वारा ज़ोर से झकझोर दिए जाने पर भी वृक्ष फूल ही बिखेरते हैं।

: 242 :

विचारशक्ति : प्रकृतिप्रदत्ता हेया जगत्यां न जनैः कदाचित्।
नृणां पशूनां च कथञ्चिदेव तदन्यथात्वे न भवेद्विवेकः।

विचारशक्ति नैसर्गिक कही जाती है अतः लोग उसे जगत् में हेय नहीं समझें, अन्यथा नर एवं पशु में भेद नहीं रह पाएगा।

: 243 :

विचार्ये च कार्ये भवेन्नैव दोषः।

विचार कर किये गये कार्य में दोष नहीं रह सकता।

: 244 :

विचित्रैषा लेके स्थितिरिह यया नन्दति जनः
क्षणान् कांश्चित्कांश्चिद् गहनतमकष्टं व्रजति च।

लौकिक स्थिति विचित्र है जहाँ व्यक्ति क्षण में ही सुख भोगता है, तो दूसरे क्षण असहनीय दुःख।

: 245 :

वितरति यदि सौख्यं पान्थवृन्दाय वृक्षो
भवति सुभृशमेतत्सार्थकत्वं तदैव।

पथिक जनों को सुख देने में ही वृक्ष की सार्थकता है।

---

241. पत्रकाव्यम्, पृ. 3/2
242. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/29
243 श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 5/12
244. वही, 20/3
245. पत्रकाव्यम्, पृ. 116/7

: 246 :

विदधति न विषादं स्वीयकृत्यं: स्मरन्तः
प्रबलमपरहेतोः क्लेशमाप्त्वापि सन्तः।

सज्जन लोग दूसरों के (हित के) लिए प्रबल कष्ट को सहन करके भी अपने सुचरित (उपकार) का स्मरण करते हुए विषाद नहीं करते हैं।

: 247 :

विद्या तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्।

विद्या मनुष्य का तीसरा नेत्र है।

: 248 :

विद्याभ्यासो व्यसनमथवा हरिपादसेवनं व्यसनम्

व्यसन दो (ही अच्छे) - या तो विद्याभ्यास या हरिपादसेवन (भगवद्भक्ति)।

: 249 :

विद्यां विना नास्ति सुखं नराणाम्।

विद्या के विना मनुष्यों को सुख नहीं है।

: 250 :

विद्याव्यसनिनां सत्यं शुभाशंसा फलेग्रहिः।
भवत्येव हि बन्धूनां सौहार्दवशनिःसृता।।

सत्य है कि विद्याव्यसनी बन्धुजनों की सौहार्दवश निकली हुई शुभकामना फलवती होती ही है।

---

246. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/58
247. पत्रकाव्यम्, पृ. 198/2
248. वही, पृ. 14/7
249. वही, पृ. 214/7
250. वही, पृ. 118/2

: 251 :

वृथाभिमानं परिहाय शक्तेः कालस्थितत्वं च विभाव्य सम्यक्।
अनन्यभावेन जनेन लोके प्रवर्तितव्यं निजकृत्यजाते॥

मिथ्याभिमान को छोड़कर "शक्ति काल में स्थित है"- ऐसा भली प्रकार जानकर व्यक्ति को दत्तचित होकर अपने कार्यों में लगा रहना चाहिए।

: 252 :

वृद्धिं गते रागमलानुषङ्गे बुद्धेर्विशुद्धेर्हि कुतः प्रसङ्गः।

राग आदि दोषों के साथ सम्पर्क बढ़ जाने पर बुद्धि की पवित्रता की बात ही कहां ?

: 253 :

विदुषां दर्शनं पुण्यं पुण्यैरेव हि लभ्यते।

विद्वानों का पवित्र दर्शन पुण्यों से ही मिलता है।

: 254 :

विदुषां शास्त्रविज्ञानां वाचः प्रस्फुरिताः स्वयम्।
सत्यमर्थानुधाविन्य इति नास्त्यत्र संशयः॥

शास्त्रज्ञ विद्वानों की स्वतः स्फुरित वाणी, निःसन्देह अर्थ का अनुसरण करती है।

: 255 :

विद्वत्तोषो हि दुर्लभः।

विद्वानों की तुष्टि आसान नहीं है।

: 256 :

विधाता दुष्टानामपि जगति साहाय्यकृतिभाक्।

विधाता जगत् में दुष्टों की भी सहायता करते हैं।

---

251. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ. कृष्णलाल महाभागान् प्रति 31.01.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
252. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 8/100
253. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ नारायण शास्त्री काङ्करान् प्रति 9.12.1999 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
254. अप्रकाशितपत्रम्, पण्डित दुर्गादत्त शस्त्रिणः प्रति 7.01.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
255. अप्रकाशितपत्रम्, श्री एस. बी. वेलण्करान् प्रति 30.8.1994 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
256. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 20/13

: 257 :

विधेर्विचित्राणि हि चेष्टितानि।

विधि की गति (चाल) बड़ी विचित्र है।

: 258 :

विधेरिच्छा बलीयसी।

विधाता की इच्छा बलवती होती है।

: 259 :

विनाऽपराधं नहि कस्य चेतोऽवमानना दुःखभरं तनोति ।

अपराध के बिना अवमानना (तिरस्कार) किस व्यक्ति के मन को दु:खित नहीं करती।

: 260 :

विना प्रेयांसं कः प्रभवति पुमाञ्जीवितुमपि।

प्रेमीजन के बिना कौन जीवित रह सकता है?

: 261 :

विना विचारं मतिमान् मनुष्यः कदापि कार्यं सहसा न कुर्यात्।
विनिन्द्यमुक्तं विपदां पदं तद् दुःख्यत्यवश्यं ह्यविमृश्यकारी।।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह कभी बिना विचारे आवेश में आकर कार्य न करे। इस प्रकार का कार्य निन्दनीय तथा विपत्तियों का आवास कहा गया है। बिना सोचे समझे कार्य करने वाला मनुष्य अवश्य दु:खभागी होता है।

---

257. इन्दिरागान्धीचरितम्, 18/11

258. पत्रकाव्यम्, पृ. 77/2

259. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 8/27

260. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 11/5

261. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/37

: 262 :

विपन्नस्य तावत्सहायस्य साह्यमवश्यं विधेयं सता मानवेन।

विपत्तिग्रस्त व्यक्ति की सहायता सज्जन को अवश्य करनी चाहिए।

: 263 :

विपन्निमग्ना अपि धर्मवीरास्त्यजन्ति कर्तव्यपथं न धीराः।

अपने धर्म पर दृढ़ धैर्यवान् पुरुष विपत्ति से ग्रस्त होने पर भी कर्त्तव्य पथ का त्याग नहीं करते हैं।

: 264 :

विपश्चितां कामदुघा मताशीः।

कहा जाता है कि विद्वानों का आशीर्वाद मनोवांछित फल देता है।

: 265 :

विपश्चितां दर्शनमेव पुण्यम्।

विद्वानों के दर्शनमात्र से पुण्य मिलता है।

: 266 :

विपश्चिदुद्धैः सह तात चर्चा प्रवर्तिता ज्ञानचयं तनोति।

मूर्धन्य विद्वानों के साथ की गई चर्चा अत्यधिक ज्ञानप्रद होती है।

: 267 :

विप्रोषितानां स्वजनस्य वृत्तं विज्ञायमानं मुदमातनोति।

प्रवासी बन्धुजनों का कुशल समाचार पता चलने पर आनन्द का सञ्चार होता है।

---

262. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 18/16
263. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/9
264. पत्रकाव्यम्, पृ. 113/23
265. वही, पृ. 219/4
266. पत्रकाव्यम्, पृ. 109
267. पत्रकाव्यम्, पृ. 33/1

: 268 :

वियुक्तानामेषा भवति विवशानामिह दशा
मनस्ताम्यद् भ्राम्यद् क्वचिदपि रतिं नैवं लभते।

वियोगी एवं विवश जनों की यही दशा होती है – मन व्याकुल रहता है एवं इधर–उधर भटकता है तथा उसे कहीं चैन नहीं मिलती है।

: 269 :

विवेकिनो नो सहसा क्रमन्ते पथा ध्रुवं येन भवेद्विनाशः।

विवेकी कभी भी अचानक (उस) मार्ग का अनुगमन नहीं करते हैं, जो विनाश की ओर ले जाता है।

: 270 :

विषमपतितमिष्टं प्रेक्ष्य सत्प्रीतिमन्तः स्वजनमुपचरन्तः प्रोन्नयन्त्येव सन्तः।

अपने प्रियजन को संकट में पड़ा देखकर सज्जन सत्प्रेमवश उसकी सेवा करते हैं और उसे उपर उठाते हैं।

: 271 :

वेद कः कपटिनां खलु वृत्तम्।

कपटी लोगों का चरित्र कौन जान पाता है?

: 272 :

व्युत्पन्नोऽपि विपद्यते विधिवशान् मृत्युर्ध्रुवः प्राणिनां
सर्वं वस्तु चलं बुधैर्निगदितं नाऽत्र स्थिरं किञ्चन।

भाग्य के विधान से चतुर मनुष्य भी मृत्यु का ग्रास बनता है क्योंकि ज़ीवों की मृत्यु अवश्यम्भावी है। विद्वानों के अनुसार यहाँ (संसार में) सभी पदार्थ अस्थायी है।

---

268. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 10/37
269. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 9/48
270. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 13/11
271. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/40
272. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 14/17

श

: 273 :

शठे शाठ्यविधानेन नैव दोषः प्रसङ्क्ष्यति।

शठ के साथ शठता करने में कोई दोष नहीं है।

: 274 :

शब्दो वाऽप्यपशब्दो वा यो वा को वा भवेन्ननु।
प्रधानं शब्द एवास्ति नापशब्दः कथञ्चन॥

जो भी हो, चाहे साधु शब्द हो या असाधु, प्रमुखता साधु शब्द की ही होती है, असाधु शब्द की नहीं।

: 275 :

शरीरकष्टं कष्टाय भवेदिष्टस्य सर्वथा।

प्रियजन के शरीर कष्ट से सर्वथा (भरपूर) कष्ट होता है।

: 276 :

शान्त्या प्रशमयेत् क्रोधं सलिलेनेव पावकम्।
चित्तं प्रसादयेद् धीमान् सर्वभूतानुकम्पया॥

जिस प्रकार पानी से अग्नि को शान्त किया जाता है उसी प्रकार शांति का आश्रय लेकर बुद्धिमान् क्रोध को निरस्त करे और जीवों पर दया दिखाकर मन को निर्मल ।

: 277 :

शास्त्राण्यनन्तपाराणि।

शास्त्रों का कोई पार नहीं है।

---

273. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 3/76
274. अप्रकाशितपत्रम्, प्रो. एम. एल कुमारियां प्रति 14.1.1995 दिनाङ्के प्रषितं पत्रम्
275. पत्रकाव्यम्, पृ. 86/3
276. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 3/81
277. पत्रकाव्यम्, पृ. 95/7

: 278 :

शिष्यप्रकर्षो यशसे गुरूणाम्।

शिष्य की उन्नति गुरु के लिए यश का कारण है।

स

: 279 :

स एव पुत्रो महितः पृथिव्यां यश्शास्ति तातहितकारिलोकम्।

वही पुत्र इस पृथ्वी पर महान् है, जो उस व्यक्ति को दण्डित करता है जिसने उसके पिता का अहित किया हो।

: 280 :

सङ्गः सतां पुण्यतमो जगत्याम्।

सज्जनों का साथ संसार में अत्यन्त पुण्यदायक होता है।

: 281 :

सङ्गश्च सद्भिर्विरलो जगत्याम्।

संसार में सज्जनों की सङ्गति अत्यन्त विरल है।

: 282 :

सङ्घट्यते जलघटो न यथार्थभग्नः कश्चेतनो भवति तेन च दुःखमग्नः।
एवं मृते जनमुदीक्ष्य कदापि कश्चित् खेदं मुधा न वहतीह वशी विपश्चित्॥

टूटा हुआ जलघट जुड़ता नहीं है। कौन बुद्धिमान् व्यक्ति उसके टूटने पर दुःख मग्न होता है? इसी प्रकार, कभी कोई इन्द्रियसंयमी विवेकी पुरुष व्यर्थ ही मृत मनुष्य को देखकर खिन्न नहीं होता।

---

278. वही, पृ. 27/8
279. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 19/7
280. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 14/9
281. पत्रकाव्यम्, पृ. 224/2
282. वही, पृ. 63/2

: 283 :

सत्कर्मणा सिद्धिमुपैति नूनं न नामधेयेन, यतस्तदूनम्।
नाम ह्युपाधिर्गुणकर्मणी न, श्रेयोऽप्यवाप्नोति तयो रतो यः॥

मनुष्य सत्कर्मों से ही सिद्धि प्राप्त करता है, नाम से नहीं, क्योंकि सत्कर्म की तुलना में वह तुच्छ है। नाम तो उपाधि है, गुण तथा कर्म उपाधि नहीं है। गुणों तथा सत्कर्मों में लीन मनुष्य श्रेयस् का भागी होता है।

: 284 :

सत्प्राणिहिंसनमिहास्ति यतः कलङ्कः।

संसार में सत्प्राणियों की हिंसा कलंक का कारण है।

: 285 :

सत्यं प्रसादोऽपि भयङ्करः स्याल्लोके जनस्यास्थिरचित्तवृत्तेः।

सच है जगत् में जिसकी चित्तवृत्ति अस्थिर है, उसकी प्रसन्नता भी भयकारी होती है।

: 286 :

सत्यमेवोच्यते प्राज्ञैर्मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।

जानकारों ने सच ही कहा है –प्राणियों की मृत्यु निश्चित है।

: 287 :

सत्यमेव जयतीह नानृतं हिंसयापि न फलत्यभीप्सितम्।

सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं। हिंसा द्वारा भी अभीष्ट प्राप्ति नहीं होती है।

---

283. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/77

284. वही, 14/43

285. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 12/44

286. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 25/21

287. इन्दिरागान्धीचरितम्, 21/9

: 288 :

सत्यव्रताः सात्यसन्धाः सत्याय मितभाषिणः।
परं सत्यमुपासीना विरला जगतीतले॥

इस संसार में सत्य का व्रत लिए, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यहेतु मितभाषी एवं परम सत्य की उपासना में लीन (व्यक्ति) विरले ही होते हैं।

: 289 :

सत्संगतिः पुण्यवशेन सत्यं सञ्जायते दिव्यसुखप्रदात्री।

पुण्यवशात् हुई सत्संगति निःसन्देह दिव्य सुख देने वाली होती है।

: 290 :

सति महति कुटुम्बेऽप्येषणीयाः स्वकीयाः
सततमसुलभास्ते भ्रातरो वन्दनीयाः॥

परिवार बड़ा होने पर भी अपने वन्दनीय तथा अत्यन्त दुर्लभ भाइयों की वंदना (स्नेह) करनी चाहिए।

: 291 :

सद्गुणाश्रयणमेव वस्तुतः श्रेयसे मनुजजन्मने।

वस्तुतः मानव का जन्म प्राप्त करने वाले के लिए सद्गुणों का आश्रय ही हितकारी है।

: 292:

सद्वृत्तेष्वपि दुर्वृत्ताः कुटिलाः सरलेष्वपि।
शीलवत्सु च दुःशीलाः संभवन्तीह संसृतौ॥

इस संसार में सदाचरण करने वालों से दुराचरण करने वाले, सरल स्वभावयुक्त सज्जनों से कुटिलता का व्यवहार करने वाले तथा

---

288. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 2/57
289. अप्रकाशितपत्रम्, स्वामी सर्वानन्दसारस्वतीमहाभागान् प्रति 21.1.1998 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
290. पत्रकाव्यम्, पृ. 108/15
291. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 5/37
292. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/19

सुशील व्यक्तियों के प्रति दुःशील लोग भी होते हैं।

: 293 :

सदाऽपकारिष्वपि चोपकाराद् द्रवन्मना योऽस्ति, महान् स एव।

अपकारी लोगों के प्रति भी द्रवित होकर जो व्यक्ति सर्वदा उपकार ही करता है, वही महान् है।

: 294 :

सदा गुणानां ग्रहणं विधेयं गुणाः प्रधानं, न तु नामधेयम्॥

व्यक्ति को सर्वदा गुणों को अपनाने में तत्पर रहना चाहिए क्योंकि गुण ही मुख्य हैं, नाम नहीं।

: 295 :

सदाचारवता जनेन भाव्यं जगत्यां शुभकृत्यकेन।

सदाचारी पुरुष को संसार में शुभ कार्य करना चाहिए।

: 296 :

सदाशयानां चरितानुकीर्तनात् सदा सदानन्दभरो विभाति।
ज्ञानं च तत्पुण्यभरं सुखं च तनोति कीर्तिं भुवि चाप्यनन्ताम्॥

शुद्धभाव वाले व्यक्तियों के चरित्रकीर्तन से सज्जनों को सदा भरपूर आनन्द मिलता है और वह ज्ञान, पुण्य एवं सुख तथा भूलोक में अनन्त कीर्ति देता है।

: 297 :

सदोषोऽस्त्ययं दोषहीनोऽथवेति स्थिते संशये नैव शक्यं प्रवक्तुम्।

सन्देह होने पर अमुक दोषी है अथवा निर्दोष - यह कहा नहीं जा सकता।

---

293. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 3/26

294. वही, 2/66

295. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,14/41

296. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/65

297. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ मिथिलेशकुमारी प्रति 2.7.1999 दिनाङ्क प्रेषित पत्रम्

: 298 :

सर्पो यथा त्यजति निर्ल्वयनीं स्वकीयां तद्वत् तनुं तनुभृदुज्झति वर्जनीयाम्।

जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली का त्याग करता है, उसी प्रकार प्राणी भी अपने नाशवान् देह का त्याग करता है।

: 299 :

समन्वयेनैव हि कार्यसिद्धिः।

मिल जुलकर कार्य करने से ही कार्य की सिद्धि होती है।

: 300 :

समीपता कायमपेक्षते किम्।

निकटता क्या शरीर की अपेक्षा रखती है अर्थात् कोई शरीर से निकट हो तभी उससे निकटता हो सकती है?

: 301 :

संचक्ष्या ह्यसुखोदर्का सदा दुर्जनसंगतिः।

दुष्टों की संगति का परिणाम निश्चय ही दुःखदायी कहा जाता है।

: 302 :

संचालनं संस्कृतपत्रिकाणामसंशयं कष्टपरम्परैव।

संस्कृत पत्रिकाओं का संचालन निःसन्देह एक के बाद एक कष्ट उत्पन्न करता है।

: 303:

संभिन्नमात्मनात्मानं मत्वा तस्मादनारतम्।
उदासीनवदासीनैः कार्यं कार्यं विचक्षणैः।।

विवेकशील पुरुषों को जीवात्मा को अपने से अभिन्न मानकर सदा तटस्थ भाव से कार्य करना चाहिए।

---

298. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 5/5
299. वही, 12/48
300. पत्रकाव्यम्, पृ. 211/13
301. पत्रकाव्यम्, पृ. 237/9
302. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 3/33
303. पत्रकाव्यम्, पृ. 249/8

: 304 :

संयोगकाले मनसि प्रहर्षो वियोगकाले सुमहच्च दुःखम्।
सुखस्य दुःखस्य परम्परैषा चित्रा विचित्रा विहिता विधात्रा॥

मिलन के समय मन आनन्दित होता है और वियोग के समय दुःखी। सुख एवं दुःख की यह अजीब परम्परा विधाता ने रची है।

: 305 :

संसिद्धिः खलु कर्मणैव कथिता स्यान्नामधेयेन किम् ।

कर्म द्वारा ही श्रेयस् सिद्धि कही गयी है, नाम से क्या होता है।

: 306 :

सम्बन्धमाभषणपूर्वमाहुः।

कहते हैं, बुलाने भर से ही सम्बन्ध हो जाता है।

: 307 :

सर्वथाऽनिष्टचिन्तानां परदारापहारिणाम्।
अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्॥

उन व्यक्तियों का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता जो (दूसरों का) सर्वथा अनिष्टचिंतन और परदारापहरण करते हैं। तभी तो यह संसार कायम है।

: 308 :

सर्वं लभ्येत जगति जनेन न सुखमैहिकम्।
स्वत एव समुद्भूतो भ्रातृस्नेहस्तु दुर्लभः॥

व्यक्ति को संसार में ऐहलौकिक सभी सुख मिल सकता है, परन्तु अपने से ही प्रकट हुआ भ्रातृस्नेह दुर्लभ है।

---

304. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 4/20
305. पत्रकाव्यम्, पृ. 236/7
306. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 14/35
307. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/28
308. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 16/27

: 309 :

सद्यो भवेद्रम्यतमेऽपि सत्यं न जातु देशे स्वजनैर्वियोगः।

सुन्दर से सुन्दर देश में भी अपने लोगों का बिछोह निःसन्देह कभी भी सह्य नहीं होता है।

: 310:

साधारणानां तु कथैव काऽस्ति येषां प्रभावो न तथा चकास्ति।
नृपे ह्यधर्मात्मनि सत्यशेषं राष्ट्रं भवेद् गर्हितनामशेषम्॥

सामान्य पुरुषों की तो बात ही क्या, जिनका इतना प्रभाव नहीं होता है। राजा के अधार्मिक हो जाने पर सम्पूर्ण राष्ट्र निन्दित एवं नष्ट हो जाता है।

: 311 :

साधुशिक्षितजना भुवि सत्यं लोकलोचनमुदं जनयन्ति।

सुशिक्षित व्यक्ति ही लोगों की आँखों को आनन्दित करते हैं।

: 312 :

सानुषाङ्गाणि सन्त्येव कल्याणानि महीतले।

भूलोक में अच्छी चीज़े जब होने लगती हैं तो एक के बाद करके होती चली जाती हैं।

: 313 :

सारं ग्राह्यमपास्य फल्गु सकलं नामादिदृश्यं जगद्
विज्ञेयं क्षणभङ्गुरं ....।

इस सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् को क्षणभंगुर जानकर निःसार वस्तुओं को त्यागकर सार वस्तु को ग्रहण करो।

---

309. अप्रकाशितपत्रम्, प्रो. एम. एल कुमारियां प्रति 14.1.1995 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
310. इन्दिरागान्धीचरितम्, 22/3
311. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/42
312. इन्दिरागान्धीचरितम्, 7/26
313. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 22/80

: 314 :

साक्षाद् दृष्टे भवति सुतरां प्रत्ययो नात्र शङ्का।

इसमें शंका की बात नहीं है कि अपनी आँखों से देखने पर विश्वास जमता है।

: 315 :

सुकृतोपार्जितानां हि पुण्यानां परिपाकतः।
लोकेऽतिदुर्लभः सत्यं विद्वत्तोषोऽधिगम्यते।।

सुकर्मों से अर्जित पुण्यों द्वारा इस संसार में अति दुर्लभ विद्वानों का तोष प्राप्त होता है।

: 316 :

सुखदुःखपरम्परा मिथ इहानुगता परिलक्ष्यते।

सुख और दुःख की श्रृंखला इस संसार में एक दूसरे का अनुसरण करती हुई दिखाई देती है।

: 317 :

सुखेषु सर्वेष्वपि सत्सु सत्यं पत्या वियोगो हृदयं दुनोति।

सभी प्रकार के सुखों के होते हुए भी पति का वियोग मन को दुःखी करता है।

: 318 :

सुतः प्रियः सर्वजनस्य नूनम्।

पुत्र, सचमुच में, सभी को प्रिय होता है।

: 319 :

सुधारसस्य निष्यन्दास्तर्पयेयुर्न कं भुवि।

अमृतरस की धाराएँ धरती पर किसे तृप्त नहीं करतीं है?

---

314. वही, 9/24
315. पत्रकाव्यम्, पृ. 10/7
316. इन्दिरागान्धीचरितम्,12/24
317. इन्दिरागान्धीचरितम्, 22/45
318. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 14/16
319. पत्रकाव्यम्, पृ. 164/4

: 320 :

सुधीजनैस्तत्त्वदृशा न्यरूपि सर्वोपकारक्षम आश्रमोऽयम्।
एनं समाश्रित्य जनः समस्य लोकस्य सेवाममलमस्ति कर्तुम्।

विद्वानों द्वारा तात्त्विक दृष्टि से इस आश्रम (गृहस्थाश्रम) को सभी आश्रमों का उपकारक माना गया है। इसमें प्रविष्ट व्यक्ति समस्त संसार की सेवा करने में सक्षम हो जाता है।

: 321 :

सुधीतोषो हि दुर्लभः।

विद्वानों को आसानी से संतुष्ट नही किया जा सकता।

: 322 :

सुशीलाश्च सद्वृत्तयश्च स्युरेव नियोज्या नियोगे स्वके सावधानाः।

जो सुशील, ईमानदार एवं सद्वृत्तिवान् होते हैं, वे अपने कार्य में सदैव तत्पर रहते हैं।

: 323 :

सूर्ये तपत्यावरणाय सत्यं भवेत्प्रकाशस्य कुतस्तमिस्रा।

सूर्य के प्रकाशित रहते अंधकार लोगों की दृष्टि को कहाँ रोक पाता है?

: 324 :

सेवा सतां सत्फलदायिनी स्यात्।

सज्जनों की सेवा सर्वदा सुफलदायिनी होती है।

: 325 :

सौम्याकृतिः प्रत्ययमादधाति।

सौम्य आकृति विश्वसनीयता पैदा करती है।

---

320. अप्रकाशितपत्रम्, श्री रक्षपाल 'राकेशं' प्रति 27.11.2001 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्
321. थाइदेशविलासम्, पृ. 119.
322. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 11/6
323. पत्रकाव्यम्, पृ. 26/2
324. वही, 9/44
325. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 14/15

: 326 :

स्वकालप्रभावस्तु सर्वातिशायीति।

अपने समय का प्रभाव सब से बढ़कर होता है।

: 327 :

स्वदेशकार्यार्थसमुत्सुकानां मार्गाः सदा कण्टकिनो भवन्ति।

अपने देश की सेवा के लिए उत्सुक लोगों के मार्ग हमेशा ही कण्टकाकीर्ण (कष्टपूर्ण) होते हैं।

: 328 :

स्निग्धतमस्य बन्धोर्वृत्तप्रवृत्तिः प्रमुदे न कस्य?

अत्यन्त स्नेहपात्र बन्धु का समाचार किसे आनन्दित नहीं करता?

: 329 :

स्वभर्तृवर्त्मप्रतिपन्नतैव स्त्रीणां विधात्रा विहिता जगत्याम्।

विधाता ने ऐसा विधान ही बनाया है कि पत्नी को पति के मार्ग का ही अनुसरण करना है।

: 330 :

स्वयमेव समुद्भूतः पर्वतान्निर्झरो यथा।
अकृत्रिमोऽनुरागो नो देशकालावपेक्षते॥

पर्वत से झरने के समान स्वयमेव प्रकट अकृत्रिम अनुराग को देश एवं काल की अपेक्षा नहीं होती।

: 331 :

स्वरक्षणान्नास्ति परो हि धर्मः।

आत्मरक्षा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

---

326. पत्रकाव्यम्, पृ. 73/8
327. इन्दिरागान्धीचरितम्, 3/8
328. वही, 16/25
329. अप्रकाशितपत्रम्, डॉ नारायणशास्त्रीकाङ्करान प्रति 27.11.2001 दिनाङ्के प्रषितपत्रम्
330. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 24/27
331. पत्रकाव्यम्, पृ. 55/7

: 332 :

स्वस्थे शरीरे कार्याणि कर्तुं शक्यानि नान्यथा।

शरीर के स्वस्थ होने पर (ही) कार्य किए जा सकते हैं अन्यथा नहीं।

: 333 :

स्वस्वामिनो ये प्रियमाचरिन्त धन्यास्त एवानुचरा भवन्ति।

जो अपने स्वामी का अभीष्ट कार्य सिद्ध करते हैं, वे सेवक ही धन्य होते हैं।

: 334 :

स्वाङ्गं चेत्स्याद् वपुषि गलितं तद् बहिष्कार्यमेव।

अपना अंग यदि गल जाए तो उसे काटना ही उचित है।

: 335 :

स्वामिनो भवति यः प्रियंकरस्तद्‌गुणान् कथमसौ न वर्णयेत्।

जो अपने स्वामी का हितैषी होता है, वह उसके गुणों का वर्णन क्यों न करे?

: 336 :

स्वामिनो हितसिद्ध्यर्थं तदेकाग्रेण चेतसा।
प्राणानपि प्रियान् सत्यं पणीकुर्वन्ति सेवकाः॥

सचमुच सेवक स्वामी की हितसिद्धि हेतु एकाग्रचित होकर कार्य करते हैं और अपने प्रिय प्राण का भी त्याग करते हैं।

: 337 :

स्वानां विरोधः किमु नैव कुर्यात्।

अपने लोगों के साथ विरोध क्या न कर दे?

---

332. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 12/25
333. पत्रकाव्यम्, पृ. 154/4
334. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 8/88
335. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 9/18
336. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/45
337. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 17/61

: 338 :

स्याद् गुणाधिकरणे क्व दूषणम्।

गुणों के अधिष्ठान में दोष की संभावना कहाँ?

: 339 :

स्वेषां परेषां च मता हि नः स्वे।

अपनों और परायों में अपने हमारे लिए अच्छे हैं।

: 340 :

स्त्रियाः कृतार्थत्वमिदं, लभेत सा मनोरमं मातृपदं शुभं यदि।
अपत्यहीना विफलाऽन्यथा त्वियं स्वजीवितं संक्षपयेदनर्थकम्॥

स्त्री की कृतार्थता इसी में है कि वह शुभ एवं मनोरम मातृपद को प्राप्त कर सके, अन्यथा सन्तानहीन विफल स्त्री अपना जीवन निरर्थक व्यतीत करती रहती है।

ह

: 341 :

हरति रुचिरगन्धा केतकी लोकचित्तं
न तु सुरुचिररूपः किंशुको गन्धहीनः।

सुन्दर गन्धवाला केवड़ा लोगों का मन आकर्षित करता है, परन्तु सुन्दर गन्धहीन किंशुक नहीं।

: 342 :

हर्म्येऽतिरम्ये सुविधोपगम्ये यथा स्वकीये सुखमारमन्ति।
राज्ञः सदाचारपरस्य राज्ये तथा मनुष्याः सुखमारमन्ति॥

जिस प्रकार लोग सुख-सुविधाओं से समन्वित अति रमणीय अपने

---

338. वही, 19/6
339. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 2/22
340. इन्दिरागान्धीचरितम्, 19/10
341. वही, पृ. 157/3
342. श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, 9/36

भवन में सुखपूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार सदाचारपरायण राजा के राज्य में प्रजाजन भी सुखपूर्वक रहते हैं।

: 343 :

हस्ते स्थिते नैव हि कङ्कणे स्यात्
कस्याऽप्यपेक्षा मुकुरस्य तावत्।

हाथ कंगन को आरसी क्या?

: 344:

ह्लादाय सततं सत्यं विदुषां सूक्ष्मदर्शनम्।

विद्वानों की सूक्ष्मदृष्टि सचमुच निरन्तर आनन्ददायिनी होती है।

: 345:

हिंसैव वर्धते बह्वी हिंसकं प्रति हिंसया।
सुखमात्यन्तिकं लब्धुमहिंसैव गरीयसी॥ ॥

हिंसक के प्रति हिंसा का व्यवहार करने से हिंसा ही बढ़ती है। परम सुख की उपलब्धि के लिए अहिंसा का मार्ग ही श्रेष्ठ है।

---

343. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, 14/16

344. अप्रकाशितपत्रम्, प. शिवनारायणशास्त्रिण: प्रति 20.6.1993 दिनाङ्के प्रेषितं पत्रम्

345. श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 3/80

परिशिष्ट–1

डा०सत्यव्रत शास्त्री द्वारा लिखित प्राक्कथनों की सूची

1. *Bhusaṇasāraprakāśaḥ* by Shri Shukdeo Jha, 1948.
2. *Vaiyākaraṇabhūṣanasāraḥ*, Ed. by Vaidya Bhim Sen Shastri, Published by the author, Delhi, 1969.
3. *Laghukaumudī* (Part II) with Bhaimī Ṭikā by Vaidya Bhim Sen Shastri, Published by the author, Delhi, 1971.
4. *Studies in the Sectarian Upaniṣads* by Dr. T.R. Sharma, Indological Book House, Delhi, 1972.
5. *Advaita Vedānta* by Dr. R.M. Sharma, National Publishing House, Delhi, 1972.
6. *Mind and Art of Bhavabhūti* by Dr. Vimla Gera, Meharchand Lachhmandas, Delhi, 1973.
7. *Sanskrit Gītāñjali* by Dr. Sushma Kulshreshtha, Mahalakshmi Publishing House, New Delhi, 1973.
8. *Vaidika Saṅgraha* by Dr. Krishna Lal, Indu Prakashan, Delhi, 1973.
9. *Purāṇānāṁ Kāvyarūpatāyā Vivecanam* by Dr. Ram Pratap, University of Jammu, Jammu, 1974.
10. *Saṁskṛte Pañcadevatāstotrāṇi* by Dr. S.N. Tripathi, Sanmarga Prakashan, Delhi, 1974.
11. *Śakti Cult in Ancient India* by Dr. Pushpendra Kumar, Bharatiya Book Corporation, Delhi, 1974.
12. *Ṛgveda par Vyākhyāna* (Hindi translation of Ghate's Lectures on the *Ṛgveda*), Ed. by Dr. Satya Vrat Shastri, University of Delhi, Delhi, 1976.
13. *Āsvalāyanagṛhyasūtra*, Ed. by Dr. R.N. Sharma, Eastern Book Linkers, Delhi, 1976.
14. *Culture and Civilization as revealed in the Śrautasūtras* by Dr. R.N. Sharma, Nag Publishers, Delhi, 1976.

15. *Kālidāsa Bibliography* by Dr. S.P. Narang, Heritage Publishers, New Delhi, 1976.
16. *Bāṅglādeśodayam* by Shri Ram Krishna Sharma, Published by the author, Delhi, Second Edition, Nag Publishers, Delhi, 1988.
17. *Vedamīmāṁsā* by Dr. L.D. Dikshit, Eastern Book Linkers, Delhi, 1980.
18. *Mokṣamūlaravaiduṣyam* by Shri Bhawani Shankar Trivedi, Arya Bharati, Delhi, 1981.
19. *Indra and Varuṇa in Indian Mythology* by Dr. Usha Choudhuri, Nag Publishers, Delhi, 1981.
20. *Prachīna Kamboj Jana aur Janapada* by Dr. Jiya Lal Kamboj, Eastern Book Linkers, Delhi, 1981.
21. *Archaic Words in Pāṇini's Aṣṭādhyāyī* by Dr. Avanindra Kumar, Parimal Publication, 1981.
22. *Aitareya Āraṇyaka - Ek Adhyayana* by Dr. Suman Sharma, Eastern Book Linkers, Delhi, 1981.
23. *Darśapūrṇamāsa - A Comparative Ritualistic Study* by Dr. Urmila Rustagi, Bharatiya Vidya Prakashan, Delhi, 1981.
24. *Vedasya Vyāvahārikatvam* by Dr. Jyotsna, Chowkhamba Vishvabharati, Varanasi, 1981.
25. *Prahlad Smarak Vaidika Vyākhyānamālā* (*Prathama Stabaka*), Ed. by Dr. Krishna Lal, Eastern Book Linkers, Delhi, 1982.
26. *Śyainikaśāstram - The Art of Hunting in Ancient India* by Dr. Mohan Chand, Eastern Book Linkers, Delhi, 1982.
27. *Darśanamālā – A Critical Edition* by Dr. R. Karunakaran, Sree Shankar Sanskrit Vidyapeetham, Quilon, 1983.
28. *Sāhityasraṣṭā Pandit Vidya Dhar Shastri* by Dr. Paramanand Saraswat, Published by the author, 1984.

29. *Kālidāsa Sāhitya evam Vādanakalā* by Dr. Sushma Kulshrestha, Eastern Book Linkers, Delhi, 1986.

30. *Madhurāmlam* by Dr. Vinapani Patni, Nag Publishers, Delhi, 1986.

31. *Kāncanī Vāsayaṣṭiḥ* by Shri Deva Datta Bhatti, Nirmal Publication, Delhi, 1987.

32. *Vālmīki aur Kālidāsa kī Kāvyakalā* by Dr. Noda Nath Mishra, Nag Publishers, Delhi, 1989.

33. *Vilāpapañcikā* by Dr. Deepak Ghosh, Published by the author, Calcutta, 1989.

34. *Karṇānandaḥ* of Shri K.C. Goswami, Ed. by Shri Hitanand Goswami, Motilal Banarsidass, Delhi, 1990.

35. *Pāṇini Re-interpreted* by Shri Charu Deva Shastri, Motilal Banarsidass, Delhi, 1990.

36. *Svānubhūtināṭakam* of Ananta Paṇḍita, Ed. by Dr. Uma S. Deshpande, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1990.

37. *Upaniṣadoṅ meṅ Yogavidyā* by Dr. Raghuvir Vedalankar, K.C. Publishers, Delhi, 1991.

38. *Faiths and Beliefs in Kathāsaritsāgara* by Dr. Nirmal Trikha, Eastern Book Linkers, Delhi, 1991.

39. *Kādambarī kā Kāvyaśāstrīya Adhyayana* by Dr. Rajeshwari Bhatt, Publication Scheme, Jaipur, 1991.

40. *Bhīmaśatakam* by Shri Shrikrishna Semwal, Delhi Sanskrit Academy, Delhi, 1991.

41. *Etymologies in the Śatapathabrāhmaṇa* by Dr. Nargis Verma, Nag Publishers, 1991.

42. *Devayānī* by Dr. Ram Kishore Mishra, Published by the author, Khekra (Meerut), 1992.

43. *The wisdom of the Upaniṣads* by Shri Jaikishandas Sadani, Calcutta, 1992.

44. *Post- Mammaṭa Sanskrit Poetics* by Dr. Sundari Siddhartha, Publication Division, University of Delhi, 1992.

45. *Cāṇakya Nīti Śāstra*. translated into Bhasa Indonesia by Shri Dharmayasa, Hanuman Sakti, Jakarta, Indonesia, 1992.

46. *Comparative and Critical Study of Ekāvali* : Contribution of Vidhyādhara to Sanskrit Poetics by Dr. Savitri Gupta, Eastern book Linkers, Delhi - 1992.

47. *Sanskrit Kāvyaśāstra Meṅ Kāvya Bimba-vivecana* by Dr. Shiva Prasad Bharadwaj Shastri, Radha Publication, New Delhi, 1992.

48. *Stuti Mañjarī* by Dr. Pullela Shri Ramchandrudu, Published by the author, 1993.

49. *Upadeśasatī* by Dr. Hari Narayana Dixit, Eastern Book Linkers, Delhi 1993.

50. *Prabhākara-Nārāyaṇa- Śrīḥ*, Studies in Indology and Musicology, Dr. Prabhakar Narayan Kawthekar Felicitation Volume, Pratibha Prakashan, Delhi, 1993.

51. *Śrīrāmachandrudulaghukāvyasaṅgrahaḥ*, by Dr. P. Sriramachandrudu, Published by the author, Hyderabad, 1993

52. *Tapovanavāsinī* by Dr. Krishna Kumar, Mayank Publication, Hardwar, 1994.

53. *Jayadeva Mahakāvya kā Śailīvaijñānika Anuśīlana* by Dr. Aradhana Jain "Svatantra", Sri Digambar Jain Munishangha, Chaturmasa Seva Samiti, Ganj Basoda, 1994.

54. *Pāṇini as a Linguist: Ideas and Patterns* by Dr. Vajanveer Dahiya, Eastern Book Linkers, Delhi 1995.

55. *Parivartanam* by Shri Khem Chand, Murti Prakashan, Delhi, 1995.

56. *Ananta Kī Ore* by Dr. Manjula Sahadev, Sahadev Publication, New Delhi, 1996.

57. *Bopadev Kā Sanksrit Vyākaraṇa ko Yogadāna* by Dr. Shanno Grover, Vidhyanidhi Prakashan, Delhi, 1996.

58. *Bhāskarācārya: A study with special reference to his Brahmasūtra Bhāṣya*, published by the author A.B. Khanna, 1997.

59. *Vālmīki Rāmāyaṇa Advitīya Mahākāvya* (Seminar Research Papers) Edited by Dr. Manjula Sahadev, Maharishi Valmiki Pitha, Panjabi University. Patiala, 1997.

60. *Narmadā*, by Shri Prashasya Mitra Shastri, Akhsayavata Prakashan, Allahabad, 1997.

61. *Parivāraniyojanam* by Shri Khem Chand, Murti Publication, Delhi 1998.

62. *Vaināyakam* by Dr. G.B. Palsule, Śaradā Gaurava Granthamālā, Pune, 1998.

63. *Pustakālaya-Paricaryā-Prasūnam* (Granthālaya Vijñānam) by Shri Ram Nayan Tiwari Shastri, Pratibha Prakashan, 1999.

64. *Śrī Mastanāthacaritam*, Edited and translated by *Dr. Saubhagyavati Nandal*, Published by Chandanath Yogi, Rohtak, 1999.

65. *Mahāsubhāṣitasaṅgraha* by Ludwik Sterbach, Ed. by S. Bhaskaran Nair, Vishveshvaranand Vedic Research Institute Hoshiarpur, 1999.

66. *Vedic Humanism (Path to Peace)* by Dr. Dilip Vedalankar, Vijay Kumar Govindaram Hasanand, Delhi, 2001.

67. *Sanskrit men Vijñāna* by Dr. Vidya Dhar Sharma Guleri, Sanskrit Bharati, Delhi, 2001.

68. *Madan Mohan Malavīya Caritam* by Dr. Khema Chand, Murṭi Publication, Delhi.

69. *The Kṛṣṇa Legend : A New Perspective* by Asha Goswami, Y.R. Publication, Delhi, 2001.

70. *Studies in Indian Culture, Science and Literature*, Prof. K.V. Sarma Felicitation Volume, Shree Sarada Education Society, Adyar, Chennai.

71. *Vaidika Sāhitya meṅ Mānava Kartavya (Visva Kalyāṇa ki dṛṣṭi meṇ)* by Dr. Md. Hanif Khan Shastri, Saista View, Sadbhāvanā Manch, New Delhi, 2002.

72. Pātañjalayogadarśana- Ek Adhyayana by Raghuvir Vedalankar, Eastern Book Linkers, Delhi, 2001.

73. *Rāmāyaṇa Sūkti Saṅgraha* by Shri Subhash Vidyalankara, Govindaram Hasaram, Delhi, 2002.

74. *Kāvyakusumastabakaḥ* by Dr. V. R. Panchamukkhi, Rashtriya Sanskrit Vidyapitha, Tirupati, 2002

75. *Amarakoṣasaya Vātāyanāt (Amarkoṣasya Sāṁskṛitikam Adhayanam)* by Dr. Rama Dublish, (under publication).

परिशिष्ट–2

डा०सत्यव्रत शास्त्री द्वारा प्रस्तुत शोधपत्रों की सूची

1. Indian Culture in the Light of Sanskrit Language, *The Poona Orientalist*, Poona, Vol. XXI, No. 1-4, 1956.
2. The Story of Udayana and Vāsavadattā through the ages, *Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Vol. XVI, No. 2, 1956.
3. Conception of Space (Dik) in the Vākyapadīya, *Journal of the Asiatic Society*, Letters, Calcutta, Vol. XXIII, No. 2, 1957.
4. Bhoodan in Ancient India, *Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Vol. XVII, Nos. 1-2, 1957. Also published in *The Tribune*, Ambala.
5. The Concept of Fate in the Rāmāyaṇa, *The Poona Orientalist*, Poona, Vol. XXIII, Nos. 1-2, 1958.
6. The Concept of Time according to Bhartṛhari, *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Poona, Vol. XXXIX, Parts I-II, 1958.
7. Studies in Sanskrit Semantics, *The Poona Orientalist*, Poona, Vol. XXIII, Nos. 3-4, 1959.
8. Advaitvādaḥ, *Sārasvatī Suṣamā (Journal of the Sanskrit University, Varanasi)*, Vol. XII, Nos. 3-4, Saṁvat 2014.
9. Indudūta of Vinayavijayagaṇi Textual Study, *The Poona Orientalist*, Poona, Vol. XXIV, Nos. 3-4, 1959.
10. Vāmanapurāṇa meṅ Kāvyacchaṭā, *Saptasindhu*, Patiala, Vol. V, No. 11, Nov., 1958.
11. Prāgaitihāsika Bhārata meṅ Jātiya Sammiśraṇa, *Nāgarī Pracāriṇī Patrikā*, Varanasi, Vol. LXIV, No. 1, Saṁvat 2016.
12. Unpāṇinian Forms in the Yogavāsiṣṭha, *Vishveshvaranand Indological Journal*, Hoshiarpur, Vol. I, Part - II, Sept. 1963.

13. On the Words Lāvaṇya, Kirāṭa and Kāhalā, *Transactions of the Linguistic Circle of Delhi*, 1966.

•14. Sanskrit Bhāṣā vic Latāvācaka Śadba, (Words for creeper in Sanskrit - article in Punjabi) *Ālocanā*, Ludhiana, Vol. XI, No. 3, 1965.

15. Notes on the Language of the Yogavāsiṣṭha, *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Poona, Golden Jubilee Volume, 1958.

16. Research in Indian Universities, *The Calcutta Review*, Calcutta, Vol. 153, No. 2, Dec. 1959.

17. Kurukshetra Through the Ages, *The Tribune*, Ambala, April 16, 1958.

18. Deepavali in Legendary Lore, *The Tribune*, Ambala, Nov. 10, 1958.

19. Food and Agriculture in Ancient India, *The Tribune*, Ambala, January 11, 1959.

20. Spring Festival in Historical Perspective, *The Tribune*, Ambala, February 15, 1959.

•21. Vṛkṣoṅ se Vivāha, *Dharma Yug*, Vol. VI, No. 42, February, 2, 1955.

•22. Bij Bone ki Katipaya Prathāyeṅ, *Dharm Yug*, Vol. I, No. 9, October, 1954.

23. Śabdoṅ ke Vikāsa Kī Bahumukhī Dhārā, *Sapta Sindhu*, Patiala, Vol. I, No. 9, Oct. 1954.

24. Punjabi Gramya Jivan Ke Vichitra Vishvasa aur Prathayen, *Viśva Jyoti*, Hoshiarpur, Vol. II, No. 10, Dec., 1954.

25. Sanskrit - Punjabi Ka Ādisrota, *Viśva Jyoti*, Hoshiarpur, Vol. III, No. 3, May, 1954.

' 26. Ātmā, *Divya Jyotiḥ*, Simla, Vol. 13, Nos. 1-2, October-November, 1957.

27. Punjabi Bhasa Ke Kucch ek Tatsama Śabda, *Hindi Sandesh*, *Journal of the Punjab Provincial Hindi Sahitya Sammelan*, Published Serially in two issues, one in January, 1954, and the other in Mar-Apr. 1954.

28. Mahābhārata meṅ Yajña, *Akhaṇḍa Jyotiḥ*, Mathura, Vol. XXVII, No. 1, January, 1956.

29. Saṁskṛta - Sāhitye Hāsyarasaḥ, *Bhāratī*, Jaipur, Vol. IX, No. 5, Saṁvat 2010.

30. Pañcabāṇas tu Bāṇaḥ, *Sanskrit Ratnākaraḥ*, Journal of the All India Sanskrit Sahitya Sammelan, Delhi, Vol. XVII, No. 12, March, 1956.

31. Surabhāratyā Laukike Vāṅmaye Prayogaḥ, *Saṁskṛta-Ratnākaraḥ*, Journal of the All India Sanskrit Sahitya Sammelan, Delhi, Vol. XVII, No. 12, March, 1956.

32. Democracy in Ancient India, *Deepak*, Ambala, Vol. VIII, No. 3, Nov.-Dec., 1955.

33. Scientists Athinking, *Varsity Mirror*, Journal of the Banaras Hindu University Yourth Forum, 1955

34. Writing in Old India, *Deepak*, Ambala, Vol. VII, No. 3, November-December, 1955.

35. Conception of Time in the Mahābhāṣya, Published Serially in *The Mysore Orientalist*, Vol. I, No. 1, 1967, (Inaugural Number in Commemoration of the Golden Jubilee of the University of Mysore) and Vol. I, No. 2, 1968.

36. Guru Gobind Singh - The Apostle of Human Brotherhood, *Guru Gobind Singh Ji 3rd Centenary Souvenir*, 3rd Centenary International Celebrations Committee, Delhi, 1968.

37. Macdonell – Kṛta Vaidika Vyākaraṇa (Chātra Saṁskaraṇa), kā Hindi Anuvāda - Samasyāeṅ aur Samādhāna, *Anuvāda*, Bharatiya Anuvada Parishad, Delhi, Vol. III, No. 4, May, 1967.

38. Yogavāsiṣṭha meṅ Kāla kā Svarūpa, *Viśvabhāratī Patrikā*, Santiniketan, Vol. VII, No. 4, 1967.

39. Delhi's Contribution to Sanskrit Literature, Published in Gujarati Translation, *Souvenir Volume* issued on the occasion of the Annual Session of the Gujarati Sahitya Parishad, Delhi, 1967.

40. Onomatopoeia in the Yogavāsiṣṭha, *Transactions of the Linguistic Circle of Delhi*, 1968.

41. Synonyms in the Bhāgvatapurāṇa, *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Poona, Vol. II, 1971.

42. Neglected Fields in Sanskrit Research, Paper read at the Seminar on Modern Sanskrit Research, Aligarh Muslim University, Aligarh, November, 1965, since published in *The Calcutta Review*, Calcutta, Vol. 180, No. 1, July, 1966.

43. Prepositional Verbs in the Yogavāsiṣṭha, Paper read at the Grammar and Linguistics Session of the Golden Jubilee Celebrations of the All India Sanskrit Sahitya Sammelan, Delhi, October, 1966. Since then published in the *Journal of the Asiatic Society*, Calcutta, Vol. IV, No. 1, 1967.

44. Bharatiya Vidyā Granthoṅ meṅ Hindi Anuvāda, *Anuvāda*, Delhi, 1967.

45. Dr. Dharmendra Shastri Ki Sanskrit Śikṣaṇa kī Navīna Yojanā, *Ṛtam* Akhil Bharatiya Sanskrit Parishad, Lucknow, 1969.

46. Dr. Raghavan : The Poet, *Dr. V. Raghavan Shashtyabdapurti Felicitation Volume*, Madras, 1971.

47. Haryana ke Ādhunika Sanskrit Sāhityakāra, Halwasia Commemoration Volume, Calcutta, 1971.

48. √Kṛ in its Various Meanings, *Pandit Kunji Lal Dube Commemoration Volume*, Jabalpur, 1972.

49. Descriptive Poetry in the Yogavāsiṣṭha, *Journal of the Department of Sanskrit*, University of Delhi, Vol. I, No. 1, Dec., 1971.

50. Some Popular Etymologies in the Yogavāsiṣṭha, *Journal of the Department of Sanskrit*, University of Delhi, Vol. I, No. 2, July, 1972.

51. Jaina Meghadūta of Merutuṅga, *Adhyayana - Anusandhāna*, Institute of Higher Studies and Research, Jaipur, Feb. 1974.

52. The Plan of the Yogavāsiṣṭha, *Studies in Indology*, Institute of Indology, Delhi, 1973.

53. Some Thoughts on Onomatopoeia, *Journal of the Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha*, Allahabad, (Ganganath Jha Centenary Volume), Vol. XXIX, Parts 1-4, 1973.

54. Sanskrit meṅ Kārakoṅ kī Vivakṣādhīnatā, Institute of Indology, Delhi, 1973.

55. Samāsavicāraḥ, *Rajasthan University Studies in Sanskrit and Hindi*, No. 5, 1973-74, Also published in *M.M. Parameshwaranand Shastri Smṛti Grantha*, 1974.

56. Dhātvarthavicāraḥ,*M.M. Parameshwaranand Shastri Smṛti Grantha*, New Delhi, 1974.

57. Saṁskṛte Paryāyavācinaḥ Śabdaḥ, ibid. Also published in English under the title: Synonyms in Sanskrit, *Indologica Taurinensia*, Torino, Italy, Vol. III, 1977.

58. Shalokas of Baba Farid - A Study in Imagery, *The Sikh Review*, Calcutta, Vol. XXIII, February-March, 1975.

59. Kumārasambhavacampū - A Study, *Indologica Taurinensia*, Torino, Italy, Vol. III, 1977.

60. The Sanskrit Usage, ibid.

61. Mahābhārate Nirvacanāni, *Ṛtam* (Prof. K.A.S. Iyer Felicitation Volume), Lucknow, Vols. II, VI, July, 1970, January, 1975.

62. Sanskrit Grammar, *Cultural Heritage of India*, Calcutta, Vol. V, 1977.

63. The Contribution of Muslims to Sanskrit, Institute of Indology, Delhi, 1977.

64. A Note on *Ka* (*Kan*) - ending words in the Yogavāsiṣṭha, *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Poona, Diamond Jubilee Volume. 1977-78.

65. Thailand ki Ayodhya, *Gaganancha1*, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, Vol. I, No. 2, 1978.

66. Thailand—Dharmoṅ aur Saṁskṛtiyoṅ kā Saṅgama, ibid., Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, Vol. II, No. 1, 1979.

67. Sanskrit in Thailand, *Indologica Taurinensia*, Torino, Italy, Vol. V, 1978.

68. A New Sanskrit Inscription from Thailand, *Indica*, Father Esteller Felicitation Volume, Heras Institute of Indian History and Culture, Bombay, 1979.

69. Thailand ki Muslim Sanskrit Vidushian, *Navabharat Times*, New Delhi, Sept. 2, 1979.

70. Thailand ke Tin Prachin Hindu Mandir, Gagananchal, Vol. III, No 3, 1979.

71. Sanskrit Studies in Thailand, *Bulletin of the IV World Sanskrit Conference*, Weimar, G.D.R., 1979.

72. Putreṣṭi in the Rāmāyaṇa - Was it really necessary? *Indologica Taurinensia*, Torino, Italy, Vol. VI, 1979.

73. Indo-Thai Relations - Cultural Perspective, *Prācyavāṇī*, Delhi, Vol. IX, 1979.

74. Poland ka Ek Vayovṛddha Bhāratīyavidyā- viśeṣajña Ludwik Sternbach, *Ṛtam*, Ludwik Sternbach Felicitation Volume, Lucknow, 1979.

75. Thoughts on the Gītā, *Ṛtam*, Ludwik Sternbach Felicitation Volume, Lucknow, 1979.

76. Mahimabhaṭṭa's Criticism of the Concept of Dhvani, *Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Vol. XXXIX, No. 1, 1979.

77. The Yogavāsiṣṭha - A Study in Vocabulary, *Indologica Taurinensia*, Torino, Italy, Vol. VII (1979), 1980.

78. Taddhita Formations in Yogavāsiṣṭha, *Brahmavidyā*, Adyar Library Bulletin, Dr. K.K. Raja Shashtyabdapurti Felicitation Volume, Madras, 1980.

79. A Note on Jinendrabuddhi's Contribution to Sanskrit Grammar, *Ancient Indian Culture and Literature*, Pt.

Gangaram Commemoration Volume, Eastern Book Linkers, Delhi, 1980.

80. Panom Rung Shrine of Thailand, *Recent Studies in Sanskrit and Indology*, Prof. Jagannath Agarwal Felicitation Volume, Ajanta Publications, Delhi, 1982.

81. Brahmins in Thailand, *Abhinandana-Bhāratī*, Prof. Krishna Kanta Handiqui Felicitation Volume, Gauhati, 1982.

82. Hinduism in Thailand, *Amṛtadhārā*, Dr. R.N. Dandekar Felicitation Volume, Ajanta Publications, Delhi, 1984.

83. Fate in Kālidāsa, *Jñānāmṛtam*, Dr. A.C. Swain Felicitation Volume, Bhubaneswar, 1985.

84. New Panom Rung Sanskrit Inscription of Thailand, *Mañjūṣā*, Dr. S.R. Rao Felicitation Volume, Bangalore, 1985.

85. Kālidāsa's Philosophy of Life, Prof. M.P.L. Sastry Felicitation Volume, Bangalore, 1985.

86. Review article on Sindhukanya, the Sahitya Akademi Award Winning Book, *Indian Literature*, New Delhi, Vol. 109, Sept.-Oct., 1985.

87. Kālidāsa's Ṛṣis, *Ṛtam*, Gopal Chandra Sinha Commemoration Volume,Lucknow, 1986.

88. The Rāmakien and the Vālmīki Rāmāyaṇa : A Study in Comparison, *Souvenir Volume*, Second International Rāmāyaṇa Conference, Bangkok, Thailand, 1986.

89. Śapathas in Ancient Sanskrit Texts - A Material Source for Culture, *India and the Ancient World*, Prof. P.H.L. Eggermont Jubilee Volume, Leuven, Belgium, 1987.

90. Vedic Sacrifices in Kālidāsa, *Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Prof. J.H. Dave Felicitation Volume, 1987.

91. The Date of the Yogavāsiṣṭha *Modern Researches in Sanskrit*, Dr. Veermani Prasad Upadhyaya Felicitation Volume, Indira Prakashan, Patna, 1987

92. The Concept of Death in the Upaniṣads, *Salute Malattia Morte* Volume of Proceedings of the International Workshop on "Health and Illness : A Comparison of the Concept in India and Europe", Venice, Italy, 1991.

93. Śrī- Chārudevaśāstriṇāṁ gadyagauravam, *Saṁskṛtapracārakam*, Delhi, 1987.

94. Sanskrit ke Arvācīna Samasyāpradhāna Rūpaka, *Dharmanīrājanā*, Volume dedicated to the memory of Dr. Dharmendra Nath Shastri, Parimal Publications, Delhi, 1989.

95. Modern Christian Literature in Sanskrit, Devavanisuvā-saḥ Rama Kant Shukla Felicitation Volume, Devavani Parishad, New Delhi, 1991.

96. Pāṇini's Regard for Usage, *Saṁskṛta - Saṅgīta-Vaijayantī*, Studies in Sanskrit and Musicology (Shrimati Kamlesh Kumari Kulshreshtha Commemoration Volume), Delhi, 1992.

97. Etymologies in the Yogavāsiṣṭha, *Oscar Botto Felicitation Volume*, Torino, Italy, 1992.

98. Karuṇa Rasa in Sanskrit Literature, *Corpus of Indological Studies*, Prof. Ramaranjan Mukherji Felicitation Volume, Delhi, 1992.

99. The Kumārasambhava - Its Genuine Portion, *The Journal of Oriental Research*, Vols. LVI-LXII, 1986-92, Dr. S.S. Janaki Felicitation Volume, Madras.

100. Synonyms in the Yogavāsiṣṭha, Prof. Biswanarayan Shastri Felicitation Volume, Gorakhpur, 1992.

101. The Hindu Marriage, *Saṁskṛta Saṅgīta-Jagadīsvarī, Studies in Sanskrit and Musicology*, Acharya Dr. Jagdish Sahai Kulshreshtha Felicitation Volume, Delhi, 1992.

102. Rāma the Ruler as Valmīki reveals him, *Proceedings of the International Conference on the Rāmāyaṇa*, Torino, Italy, 1992.

103. Etymologies in the Devībhāgavata, *Purāṇa Itihāsa Vimarśaḥ*, Dr. S.G. Kantawala Felicitation Volume, Baroda, 1992.

104. The Thai Rāmāyaṇa in Literature, *Rāmāyaṇa Traditions and National Culture in Asia*, Directorate of Cultural Affairs, Govt. of U.P., Lucknow, 1989.

105. Vaideṣikavīdūsāṁ Saṁskṛita racanāḥ, *Parisīlanaṃ*, Uttar Pradesh Sanskrit Academy, Lucknow, Feb. 1990.

106. Thoughts on the Gītā, Sixth International Gītā Conference, Bangkok, Thailand, 1992.

107. Some Peripheral Literature : Lexicography and Medicine, *Indian Horizons*, (Special Issue : Sanskrit Literature), Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, Vol. 44, No. 4, 1995.

108. The Mahābhārata in World Literature, *Modern Evaluation of the Mahābhārata*, Prof. R.K. Sharma Felicitation, Volume, Nag Publication, Delhi, 1995.

~~109. The Vālmiki Rāmāyaṇa and the Thai Rāmakien, A Study in Comparison, *Journal of the Asiatic Society of Bombay*, Vol. 70, 1995.~~

110. Thai Kathā meṅ Hanumān, *Sanskrit Vāṅamaya meṅ Hanumān*, Rajasthan Sanskrit Academy, Jaipur, 1996.

111. Personality of Maharṣi Vālmīki as the Rāmāyaṇa reveals him, Maharshi Valmiki Peeth, Punjabi University, Patiala, 1997.

112. Sanskrit Studies in Thailand, *Sanskrit Studies Outside India*, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, 1997.

113. Hindu Culture in Thailand, *Religion, Politics and Society in South and Southeast Asia*, Konark Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1998.

114. Significance of Dreams in the Rāmāyaṇa, Proceedings of the International Seminar on Vālmīki Rāmāyaṇa, *Journal of the Oriental Institute*, Special Issue, M.S. University of Baroda Vadodara, Vol. XLVIII, Nos. 1-4, Sept. 1998 - June 1999.

115. Subhāṣitas in the Purāṇas - A Cultural Perspective, *Proceedings of the Conference on Sanskrit and Related Studies* to commemorate the centenary of the birth of Stanilaw Schayer, Warsaw University, Poland, 2000.

116. How the Rāmāyaṇa Began, *Dr. Ga. Vā. Gaurava Grantha*, G.V. Tagare Felicitation Volume, V.V. Gogeta, Sangli, 2001.

117. Mere Anukaraṇīya Guru, *Anukaraṇīya Guru*, I.B.A. Publication, Ambala Cant, 2001.

118. Suffering: How Indian Thinkers Look at it, *Proceedings of the International Conference on East and West;* Different Theories and Medical Systems, Cesmeo, International Institute for Advanced Asian Studies, Torino, Italy, 2001.

119. Bīsaviṅ Śatī meṅ Sanskriti and Jīvanamūlya Bharatiya Bhasha Parishad, No. 75, Sep., 2001.

120. Rāma story in Thai Folklore, International Rāmāyaṇa Conference, 2001. *Cultural and Literary Variations of Rāmāyaṇa Worldwide*, Northern Illinois University, U.S.A. 2001.

121. Sanskritic Content in Thai, Proceedings of the International Conference on Sanskrit in Southeast Asia — The Harmonizing factor of Cultures, 2002.

122. Development of Sanskrit Kāvya Literature during 20th century, Prof. Avanindra Kumar Felicitation Volume, Delhi, 2001.

परिशिष्ट–3

डा०सत्यव्रत शास्त्री के निर्देशन में हुए शोधकार्यों की सूची

1. "*A Critical Survey of the Geographical Material in the Nīlamata, the Matsya, the Viṣṇu and the Vāyu Purāṇas*" by Dr. Savitri Saxena
2. "*A Study of Sanskrit Dramas of the 20th Century*" by Dr. Usha Satyavrat
3. "*Patañjali as a critic of Kātyāyana and Pāṇini*" by Dr. Sudarshan Kaushik
4. "*A Study of Allegorical Sanskrit Dramas*" by Dr. Satnam Duggal
5. "*A Critical Study of Abhidhā*" by Dr. Y.D. Sharma
6. "*Art and Mind of Bhāsa*" Dr. Veera Bala
7. "*Historical Mahākāvyas in Sanskrit (11th to 15th century A.D.)*" by Dr. Chandra Prabha
8. "*A Critical Study of Kathā Literature in Sanskrit from 7th Century A.D. to 10th Century A.D.*" by Dr. Kamal Anand
9. "*A Study of Vidyās in the Upaniṣads*" by Dr. Snehlata Bhargav
10. "*Unpāṇinian Sandhi and Syntax in the Mahābhārata*" by Dr. Veena Bhatnagar
11. "*A Study of Metres in Sanskrit Dramas*" by Dr. Ujjawala Sharma
12. "*A Study of Padamañjarī.*" by Dr. Tirath Raj Tripathi
13. "*The Carakasaṁhitā - A Literary Study*" by Dr. Madhu Sharma
14. "*A Study of the Commentaries on the Śvetāśvatara Upaniṣad*" by Dr. Vedati Vaidic
15. "*A Study of Nyāsa*" Dr. Vaidya Bhimsen Shastri
16. "*Stage-Directions, Properties and Stage Setting in Sanskrit Dramas (from beginning to 10th Century A.D.)*" by Mr. U.B. Gupta

17. *"Modern Sanskrit Language"* by Dr. Sadananda Dikshit
18. *"Mahābhaṣya ke Vyākhyakara ke rūpa meṅ Kaiyaṭa"* by Dr. Anita Sharma
19. *"Kālidāsakāvye Śabdaparipākaḥ"* by Dr. Nityanand Sharma
20. *"A Critical Study of Bṛhaddevatā"* by Dr. Mrs. Aruna Verma
21. *"The Saṁskrit Sources of the Indonesian Rāmāyaṇa"* by Dr. Somveer
22. *"Arjuna in the Indian and Indonesian Mahābhāratas - A study in comparison"* by Dr. Budya Pradipta

परिशिष्ट–4

डा०सत्यव्रत शास्त्री द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदत्त महत्वपूर्ण व्याख्यान की अनुक्रमणिका

क. राष्ट्रीय स्तर पर

1. Lectures on *"Sanskrit and Hindi Phonetics"* delivered in the Staff Training School, All India Radio, New Delhi, on 16.3.1961, 23.3.1961, 20.3.1961 and 6.4.1961.
2. Lecture on *"Prepositional Verbs in the Yogavāsiṣṭha"* delivered in the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, April, 1968.
3. Lecture on *"Sanskrit Semantics"* delivered in Jadavpur University, Calcutta, April, 1968.
4. Lecture on *"Epigraphy and Sanskrit"* delivered in the Government of India, Epigraphy Office, Mysore, June, 1968.
5. Lecture on *"Synonyms in Sanskrit"* delivered in Centre of Advanced Study in Sanskrit, University of Poona, Poona, January, 1969.
6. Lecture on *"Delhi's Contribution to Modern Sanskrit Literature"* delivered in the Prācyavāṇi, New Delhi in November, 1971.
7. Lecture on *"Indian Culture in the Light of the Sanskrit Language"* delivered in the University of Jammu, Jammu, February, 1970.
8. Lecture on *"Kālidāsa ke Kāvya meṅ Śabdaparipāka"* delivered in Indore University, November, 1970.
9. Lecture on *"Contribution of Haryana to Modern Sanskrit Literature"* delivered in the Kurukshetra University, January, 1972.
10. Lecture on *"Kālidāsa Kā Kāvyasauṣṭhava"* delivered in the University of Jabalpur, Jabalpur, January, 1971.
11. Lecture on *"Synonyms and Homonyms in Sanskrit"* delivered in Vikram University, Ujjain, January, 1972.

12. Lecture on *"Modern Sanskrit Writers of Delhi"* delivered in the Seminar on Twentieth Century Sanskrit Literature, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, September, 1972.

13. Lecture on *"Modern Sanskrit Literature"* delivered in the University of Bangalore, September, 1972.

14. Lecture on *"Synonyms in Sanskrit"* delivered in Osmania University, Hyderabad, September, 1972.

15. Lecture on *"Dhātvarthavicāraḥ"* delivered in Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi, January, 1974.

16. Lecture on *"Sphoṭavicāraḥ"* delivered in Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi, January, 1974.

17. Lecture on *"Saṁskṛte paryāyavācinaḥ Śabdāḥ"* delivered in Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi, January, 1974.

18. Lecture on the *"Contribution of Muslims to Sanskrit"* delivered under the auspices of the Institute of Indology, New Delhi, May 5, 1977 (Sri B.D. Jatti, Acting President of India Presided).

19. A series of three Lectures on the *"Language of the Yogavāsiṣṭha"* delivered in the Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Allahabad, March 25-27, 1976.

20. A Series of three Lectures on *"Kālidāsa Retold"* delivered in the Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati, February, 1976.

21. A Series of two Lectures on *"Kārakāṇāṁ Vivakṣādhīnatvam"* delivered in the Sanskrit College, Calcutta, March 30-31, 1976.

22. A Series of three Lectures known as Dr. K.P. Trivedi Lectures on *"Some Modern Adaptations of the Works of Kālidāsa"* delivered in the South Gujarat University, Surat, January 27-29, 1977.

23. *U.G.C. Extension Lectures*, delivered in the University of Bhagalpur, March 11-13, 1981.
24. *Dr. A.D. Pusalkar Memorial Lecture on the Rāmāyaṇa in Thailand*, delivered in Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, September 25, 1981.
25. *Saṁskṛte Paryāyavācinaḥ Sabdāḥ* delivered in Shri Sadasiva Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Puri, August 23, 1983.
26. Inaugurated the Students Union of the Berhampur University, Berhampur, January 18, 1984.
27. *Pandit Surya Narayan Vyas Memorial Lecture on "Kalidasa ki Jīvanadṛṣṭi"* delivered at Kalidasa Samahroh, Vikram University, Ujjain, November 20, 1991.
28. *Acharya Vishwa Bandhu Memorial Lecture on (i) The Role of the Bṛhaddevatā in Vedic Interpretation, (ii) Sacrifice in Kālidāsa and (iii) Macdonell and Vedic Grammar*, delivered in Chandigarh and Hoshiarpur, January 26-28, 1992.

ख) अन्तर्राष्टीय स्तर पर

1. Lecture on *"Sanskrit Synonyms"* delivered in the University of Tübingen on June 17, 1975.
2. Lecture on *"Modern Sanskrit Literature"* delivered in the University of Heidelburg, June 20, 1975.
3. Lecture on *"Modern Sanskrit Poetry with special reference to my own poetry"* delivered in the University of Tübingen, June 27, 1977.
4. Lecture on *"Kālidāsa's Philosophy of Life"* delivered in the University of Munich, June 28, 1977.
5. Lecture on *"Vedic Verb Forms"* delivered in the University of Erlänger., June 29, 1977.
6. Lecture on *"Sanskrit Synonims"* delivered in the University of Hamburg, July 4, 1977.

7. Lecture on *"Contribution of Muslims to Sanskrit"* delivered in the University of Hamburg, July 4, 1977.
8. Lecture on *"Contribution of Muslims to Sanskrit"* delivered in the Alexander Von Humboldt University, Berlin (G.D.R.) July 4, 1977.
9. Lecture on the *"Concept of Time in Ancient Indian Thought"* delivered in the Koresi Csoma Society, University of Budapest, July 26, 1977.
10. Lecture on *"Kāvya Elements in Sanskrit Literature"* delivered in the Columbia University, New York, Oct. 11, 1978.
11. Lecture on *"Contribution of Muslims to Sanskrit"* delivered in the University of Pennsylvania, Philadelphia, October 17, 1978.
12. Lecture on *"Philosophy of the Upaniṣads and the Law of Karman"* delivered in the Mc. Gill University, Montreal, October 18-19, 1978.
13. Lecture on *"Upaniṣads and the Gītā"* delivered in the Concordia University, Montreal, October 18, 1978.
14. Lecture on *"Sanskrit in Thailand"* delivered in the University of Toronto, Toronto, October 23, 1979.
15. Lecture on *"Aspects of Sanskrit Literature"* delivered in the Brock University, St. Cathrines, October 25, 1978.
16. Lecture on *"Thai words in Relation to Sanskrit"* delivered in the University of Wisconsin, Madison, October 26, 1978.
17. Lecture on *"Sanskrit Semantics"* delivered in the University of Chicago, Chicago, October 27, 1978.
18. Lecture on *"Sanskrit Culture, Sanskrit Poetry and Indian Culture in the Light of Sanskrit Language"* delivered in the University of Calgary, Calgary, October 30-31, 1978.
19. Lecture on *"Concept of Time in Ancient Indian Thought"* delivered in the University of Edmonton, Alberta, November 1, 1978.

20. Lecture on *"Modern Sanskrit Literature"* delivered in the British Columbia University, Vancouver, Nov. 3, 1978.

21. Lecture on the *"Contribution of Muslims to Sanskrit"* delivered in the University of California, Los Angeles, November 6, 1978.

22. Addressed the Royal Nepal Academy, Kathmandu, May 4, 1979.

23. Lecture on *"Sanskrit Studies in India"* delivered in the University of Tokyo, September 29, 1980.

24. Lecture on *"Sanskrit Studies in India and Thailand"* delivered in the University of Kyoto, September 30, 1980.

25. Lecture on *"Origin and Development of Sanskrit Drama"* delivered in the University of Venice, May 30, 1982.

26. Lecture on *"Modern Sanskrit Drama"* delivered in the Catholic University, Leuven, Belgium, March 18, 1985.

27. Lecture on *"Modern Hindu Society"* delivered in the Catholic University, Leuven, Belgium, March 26, 1985.

28. Lecture on *"Essentials of Hinduism"* delivered in the Faculty of Comparative Religion, Antwerp, Belgium, May 8, 1985.

29. Lecture on *"Ṛṣis of Kālidāsa"* delivered in the University of Tübingen, Tübingen, West Germany, June 8, 1986.

30. Lecture on *"Kālidāsa's Philosophy of Life"* delivered in the University of Münster and Bonn, West Germany, June 18 and 20, 1986 and the University of Torino, Torino, Italy, June 18 and 20, 1986 and the Universities of Torino, Torino, Italy, June 2, 1987.

31. Lecture on *"Indian Culture and its Influence on South-east and East Asia"* delivered in Leuven, Belgium to

mark the Golden Jubilee of the setting up of the Oriental Institute, May 11, 1987.

32. Lecture on "*Indian Culture in the Light of Sanskrit Language*" delivered in the University of Torino, Torino, Italy under the auspices of CESMEO, June 3, 1987 and in the University of Alberta, Edonton, Canada, April 5, 1988.

33. Lecture on "*Rāma Story in Thailand*" delivered in the University of Torino, Torino, Italy under the auspices of CESMEO, June 4, 1987, and in the University of Alberta, Edmonton, Canada, April 5, 1988.

34. Lecture on "*Vedic Sacrifices in Kālidāsa*" delivered in the University of Torino, Torino, Italy under the auspices of CESMEO, June 5, 1987.

35. Lecture on "*Modern Hindu Society*" delivered in the University of Alberta, Edmonton, Canada, March 21, 1988 and the University of Calgary, Calgary, Canada, March 25, 1988.

36. Lecture on "*Concept of Time according to Bhartṛhari*" delivered in the University of Alberta, Edmonton, Canada, March 22, 1988.

37. Lecture on "*Cult of Jagannātha in Historical Perspective*" delivered in the University of Lethbridge, Lethbridge, Canada, March 24, 1988.

38. Lecture on "*Sanskrit Studies in India*" delivered in the University of Calgary, Calgary, Canada, March 25, 1988.

39. Lecture on "*Hindu Marriage*" delivered in the University of Alberta, Edmonton, Canada, April 28, 1988.

40. Lecture on "*Death in the Upanisads*" delivered in the University of Alberta, Edmonton, Canada, March 29, 1988.

41. Lecture on "*Māyā and the Ethics of Hinduism*" delivered in the University of Alberta, Edmonton, March 30, 1988.

परिशिष्ट—5

डा०सत्यव्रत शास्त्री की रचनाओं पर हुए शोधकार्यों की सूची

(क) पूर्ण शोधकार्य

1. A thesis on a study on Dr. Satya Vrat Shastri's Prabandhakāvya, the Śrīgurugovindasiṁh- acaritam by Indira Sharma was approved for the M.A. degree by the Punjabi University, Patiala in 1973-74.
2. Ph.D. degree on a thesis on a study of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya, the Indirā Gāndhīcaritam: *Indirā Gāndhīcaritam - Ek Samīkṣātmaka Adhyayana* by Indira Kant Pathak was awarded by the Bhagalpur University, Bhagalpur in 1989.
3. Ph.D. degree on a thesis on *Dr. Satya Vrat Shastri - Poet and Critic* by Vinita Singh was awarded by the Kurukshetra University, Kurukshetra in 1991.
4. M.Phil degree on a dissertation on the Character of Sītā in Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya Śrīrāmakīrtimahākāvyam: *Śrīrāmakīrtimahākāvya meṅ Sīta kā Svarūpa* by Savitri Shukla was awarded by Rani Durgavati Vishvavidyalaya, Jabalpur in 1992.
5. D. Litt. degree on a thesis: *A Critical Evaluation of Dr. Satya Vrat Shastri's Creative Works* by S.V.Varma was awarded by the Kumaun University, Nainital in 1994.
6. Ph.D. degree on the study of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya, Śrīrāmakīrtimahākāvyam: *Śrīrāmakīrtimahākavyam - Ek Adhyayana* by Poonam Sharma was awarded by the Kurukshetra University, Kurukshetra in 1995.
7. Ph.D. degree on a thesis on a study of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya, the Indirā Gāndhicaritam: *Dr. Satya Vrat Shastrikṛta Indirā Gāndhīcaritam kā Ālocanātmaka Adhyayana* by Vibhuti Mishra was awarded by Kanpur University, Kanpur in 1995.
8. D.Lit.. degree on an assessment of Dr. Satya Vrat Shastri on the totality of his work, creative, critical and translation under the title Saṁskṛta Saṁskrti-Sādhanā by Kamal Anand was awarded by the Punjab University, Chandigarh in 1998.
9. Ph.D. degree on the linguistic study of Dr. Satya Vrat Shastri's

Mahākāvya Śrīrāmkīrtimahākāvyam: *Śrīrāmakīrtimahā-kāvyam kā Bhāsāvaijñānika Adhyayana* by Jaikrishna Sharma was awarded by the Maharishi Dayanand University, Rohtak in 1998.

10. Ph.D. degree on a study of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya, Śrībodhisattvacaritam : *Śrībodhisattvacaritam Mahākāvya kā Samīkṣātmaka Adhyayana* by Shyam Kumar Sharma was awarded by the Meerut University, Meerut in 1998.
11. Ph.D. degree on a comparative study of the themes of the Kṛttivāsa Rāmāyaṇa and Dr. Satya Vrat Shastri's Śrīrāmakīrtimahākāvyam: Kṛttivāsa Rāmāyaṇa aur Śrīrāmakīrtima- hākāvyam ke Kathānakoṅ kā Tulanātmaka Adhyayana by Pampa Sen was awarded by the Ranchi University, Ranchi in 1999.

ब) अपूर्ण शोधकार्य

1. A thesis for the Ph.D. degree on the literary evaluation of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya: *Śrīrāmakīrtimahākāvyam kā Sāhityika Anusilana* by Savita Devi is in progress at the University of Delhi, Delhi.
2. A thesis for the Ph.D. degree on the critical evaluation of Dr. Satya Vrat Shastri's Mahākāvya Śrīrāmakīrtimahākāvyam: *Śrīrāmakīrtimahākāvyam kā Samīkṣatmaka Adhyayana* by Durga Datt Tripathi is in progress at the Kumaun University, Nanital.
3. A thesis for the Vidyāvāridhi (Ph.D.) degree on a comparative study of the themes of the Vālmiki Rāmāyaṇa and Dr.Satya Vrat Shastri's Śrīrāmakīrtimahākāvyam: *Valmiki Rāmāyaṇa aur Śrīrāmakīrtimahākāvyam ke Kathānakoṅ kā Tulanātmaka Adhyayana* by Ganesh Nath Mishra is in progress at the Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga.
4. A thesis for the Ph.D. degree on the evaluation of Rasas iṅ Dr. Satya Vrat Shastri's Śrīrāmakīrtimahākāvyam: *Dr. Satyavrataśāst- riviracitaśrīrāmakirti mahākāvye Rasayojanā* by Satya Vir Shastri is in progress at the Gurukul Kangri Vishvavidyalaya, Hardwar.
5. A thesis for the Ph.D. degree on a comparative study of the themes of the Rāmāyaṇa in the Maithili Language and the Śrīrāmakīrtim-ahākāvyam: *Mithilā Bhāsa Rāmāyaṇa aur Rāmakīrtimahākāvya ke Kathānakoṅ kā Tulanātmaka Anusilana* by Savita Jha is in progress at the Ranchi University, Ranchi.